त्यामृतधारा

श्री गुरुदयालु शर्मा

श्री गुरुदयालु शर्मं निर्मितं

काव्यामृतधारा

नाम मुक्तक काव्यम्

स्वकृत पीयूषधारा

नाम

हिन्दी व्याख्या सहितम्

संवत् २०२६ विक्रमी सन् १६७२

अमूल्यम्

प्रथमं संस्करणम्

मुद्रक : विजयन्त प्रैस, ईस्ट ऐवेन्यू मार्केट, पंजाबी बाग, नई दिल्ली ।

अथ काव्यामृत-धारायां

व्यक्ति विवेक तरंगः ॥११॥

यस्यायमाद्यः श्लोकः—

भावानां च रसानां च,
व्यक्ति र्नयाति वाच्यताम् ।
वरस्त्रीणां प्रभूणां च,
व्यक्तित्वं वागगोचरम् ।।१।।

२३-१०-६१

विभावानुभाव-स्थायी-संचारी-भाव, या गुरु आदि विषयक रति भाव, एव श्रृंगारादि रस, व्यंग्य होते हैं, वाच्य नहीं, अथवा इन भाव एवं रसों की ध्वनि (वाच्यता)=निन्दा के योग्य नहीं। उत्तम स्त्री एवं प्रभुओं का व्यक्तित्व अवचनीय होता है, अथवा वर स्त्री एवं प्रभु के सामने बोलना कठिन होता है।

तदुक्तं—

राजनि विदुषां मध्ये वरसुरतानां समागमे स्त्रीणाम् ।
साध्वसदूषितहृदयो वाक्पटुरपि कातरो भवति ।।१।।

अचलेश्वर महादेवः

(वटालय पंजाब)

विरह बिगलदंगो भंगरंगापगंगः,
तपन तपन तापाद् वाम काम प्रतापाद् ।
झटिति जघनदध्नाम्भोन्तरे नित्यमग्नो,
दहतु 'गुरुदयालोः' सोऽचलोऽघं सुखालोः ॥२॥
सं० १९७५ वि०

नीराजना राजि विराजि बिम्बे,
रत्नाकर भ्रान्तिमता हिमांशुना ।
प्रसारिता रात्रिमुखे कराग्रा,
रिक्तोदरा जाड्यमृणालतामयुः ॥३॥

वटालय के पास सरोवर में अचलेश्वर महादेव का मन्दिर है, मानो शिव शंकर वियोगाग्नि से तप्त होकर जल में आघुसे हों, सायंकालीन आरती की ज्योतियों के प्रतिविम्ब जल में पड़े तो चन्द्रमा ने रत्नों की भ्रांति से प्रदोषान्धकार में रत्नों की चोरी के हेतु अपने कर=(किरणें या हाथ) जल में डाल दिये, फलस्वरूप कर (हाथ) खाली ही रह गये, जड़ हो गए और वे ही मृणाल बन गए ॥२॥३॥

'अनन्तस्तव'

श्री० अनन्तशयन आयङ्गर जी के संसद् का अध्यक्ष चुने जाने पर अभिनन्दन समारोह में पढ़ा गया विनोदात्मक प्रबन्ध :—

अनन्तशयनश्चित्रं ! नियुक्तो लोकरक्षणे ।
अनन्तशयनश्चित्रं नियुक्तो लोकरक्षणे ॥४॥

अनन्त=शेष नाग पर अनन्त काल तक सोने वाले विष्णु को लोक रक्षा का भार सौंपना एवं इन अनन्तशयन जी को लोक सभा का अध्यक्ष पद दोनों बातें विचित्र हैं । लाटानुप्रास अलंकार है ॥४॥

अनन्तशयनो विष्णु: श्रीमदार्वर्जित: सदा ।
अनन्तशयनो प्येष श्रीमदावर्जितोऽघुना ॥५॥

अनन्तशायी विष्णु सदा लक्ष्मी के मद से (अवर्जित) युक्त रहते हैं । एवं अब ये अनन्तशयन जी श्रीमद्+आवर्जित=श्रीमानों से अनोनीत किए गए हैं ॥५॥

अनन्तशयनो विष्णु:, सुखं निद्रावशं गत: ।
अनन्तशयनस्त्वेष, सावधानोऽस्ति संसदि ॥६॥

विष्णु तो सुख से (अनन्त)=शेष पर सोए रहते है, परन्तु ये अनन्त शयन होते हुए भी संसद में सदा सावधान रहते है । व्यतिरेकालंकार है ॥६॥

अनन्त शयनो जातो, विष्णुभक्तिपरो भवान् ।
सारूप्यभक्तिभावो ही, भवता सार्थकीकृतः ।।७।।

१७-३-५६

कहते हैं कि अनन्यभक्त इष्टदेवस्वरूप हो जाता है, अतः अनन्त-शयनविष्णु के अनन्य भक्त होने से आप भी 'अनन्तशयन' हो गए हैं ।।७।।

हिरण्यगर्भो द्रुहिणः पक्षपातिप्रियो हरिः ।
भवता नोपमार्हौ तौ, +उग्रोपि विषमेक्षणः ।।८।।

ब्रह्मा हिरण्य गर्भ=सोना छुपाने वाला और द्रुहिणः=द्रोही है, विष्णु पक्षपाती=(पक्षों से पतन शील=गरुड़) का प्रिय है, अतः ये दोनों आपकी तुलना के योग्य नहीं, अथच शंकर भी तो उग्रस्वभाव वाले तथा (विषम+ईक्षण)=विषमदृष्टि हैं। आप सुवर्ण छुपाते नहीं, किसी से द्रोह नहीं करते, पक्षपात से घृणा करते हैं, सौम्य हैं, समदृष्टि हैं अतः उक्त हेतु व्यतिरेक है ।।८।।

ज्ञानवृद्धः, तपोवृद्धः, वर्णवृद्धःस् तथा भवान् ।
चित्रं ! चित्रं ! वयोवृद्धः, पतित्वे संसदा वृतः ।।९।।

१७-३-५६

आप विद्या में वृद्ध (बड़े बुढ़े) हैं, तपस्या में वृद्ध (बढ़ चढ़ कर) हैं, ब्राह्मण होने से वर्णों में वृद्ध=बड़े हैं, आश्चर्य है कि आयु में भी वृद्ध (बड़े बूढ़े) हैं, तो (अष्टवर्षीया) संसद ने आपको (सभा) पति कैसे चुन लिया ? ॥९॥

अष्टवर्षा वृता संसद् +षष्टिवर्षायुषा त्वया ।
ऐड्वोकेटो पि किं तात ! शारदैक्टमुपेक्षसे ? ॥१०॥

आपने साठ वर्षों की आयु में भी आठ साल की संसद् का वरण कर लिया । एडवोकेट होते हुए भी शारदा ऐक्ट की उपेक्षा क्यों कर रहे हो जी ? ॥१०॥

संसदो ऽस्याः पति भूंत्वा, स्थाने प्रीतमना भवान् ।
"वृद्धस्य तरुणी भार्या, प्राणेभ्योपि गरियसी" ॥११॥

प्रत्यर्थिनो यो जयति स्वयंवरे,
तमेव लोकाः सुभगं प्रचक्षते ।
वृतो भवेद्यस्त्वसति द्वितीये,
कंस्तस्य गर्वे सुलभोऽवकाशः ॥१२॥

स्वयंवर में जो कई प्रत्यर्थियों में से वरमाला ले जाए वही विजयी समझा जाता है, परन्तु जो अकेला ही वरेण्य हो उसके चुन लिए जाने में गौरव (शेखी) की क्या बात है ?'

यहां निर्विरोध चुने जाने को स्तुति योग्य होने पर भी निन्दनीय कहा गया है, अतः यह निन्दा भी स्तुतिपरक व्याजस्तुति अलंकार है ॥१२॥

उपपतिरभवस्त्वं 'मावलंकार' सत्त्वे,
प्रवसति सति तस्मिन्+तत्पदं चाध्यतिष्ठः।
गतवति परलोकं प्राप्तवान्+तत्पतित्वं,
परिणयति परेते देवरो भ्रातृजायाम् ॥१३॥

१-६-६७

श्री मावलंकारजी के (सभापति) विद्यमान होने पर आप संसद् के उपपति=उपाध्यक्ष (उपनायक) थे और उनके प्रवास जाने पर आप उनके मंच पर विराजमान हो जाते थे. अब उनके परलोक सिधार जाने पर आप इस संसद के पति बन बैठे हैं, सच कहते हैं कि 'देवरः द्वितीयो वरः भवति' ॥१३॥

तद्यथा—

तारा यथा प्राप पतिं सुकण्ठं,
मन्दोदरी वापि विभीषणं च।
तथा भवन्तं वृणुते स्म संसत्,
स्वर्गं गते स्वामिनि देवराभम् ॥१४॥

अथ स्तोत्रमाहात्म्यम्— १७-३-५७

अधीते य इदं नित्यम् अनन्तस्तवमुत्तमम्।
परमं पदमाप्नोति, संसदो नात्र संशयः ॥१५॥
गैलरीं लभते श्रोता, वक्ता चेत्समयं क्षणात्।
अश्रद्दधानः पुरुषः, गलहस्तं पुलीसतः ॥१६॥

१७-३-५६

इति अनन्त स्तोत्रम्।

किसी कविगोष्ठी में पं० अमीरचन्द्र जी शास्त्री ने 'वेद का अधिकार द्विजमात्र को ही है' इस विषय पर पद्यात्मक निबन्ध पढ़ा था, उसकी आलोचना के लिये मुझे कहा गया, पर मैंने प्रमादवश उनका नाम अमीचन्द्र सुना और उसी आधार पर निम्न रचना कर डाली, अतः क्षमाप्रार्थी हूं।

'अमीचन्द्रः शास्त्री'

अमृतममीचन्द्र करा नयने-हृदये निशासु सिञ्चन्ति।
अमृत 'ममीचन्द्र'गिरोनयने-हृदये-श्रुतावसिञ्चन्मे ॥१७॥
५-२-५६

वे चान्द की किरणें रात को नेत्र तथा हृदय में अमृत सींचती हैं पर इन अमीचन्द्र जी की वाणी ने नेत्र-हृदय और कानों में अमृत टपका दिया है। क्योंकि चन्द्र किरणें कानों में अमृत नहीं सींचती अतः इनमें व्यतिरेक है ॥१७॥

श्रुतिविषये ऽस्य निबन्धे, श्रुतिविषये जातमात्रे ही।
द्विजदत्तोप्यधिकारो, द्विजजडतां मेऽ करोत्सद्यः ॥१८॥

जब इनका श्रुति (वेद) विषयक निबन्ध मेरी श्रुति (कान) का विषय बना, तब द्विजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) को दिए हुए (वेदाध्ययन) अधिकार ने मेरे द्विजों (दांन्तों) को जड़ बना दिया। 'अर्थात् निबन्ध सुनकर मैं अवाक् रह गया।' जो वेद ज्ञान एक ओर द्विजों को ज्ञानी बना देता है, उसी ने द्विजों को जड़=अज्ञानी या (जकड़े हुए) बना दिया ॥१८॥

संकुचितोऽपिविचारो, भवतोवेदाधिकारविषयेऽस्मिन् ।
नयनं-हृदयं-वदनं-रोमाञ्चं मेऽ करोत् स्फारम् ।।१६।।

यद्यपि यह आपका वेदाधिकार विषयक विचार स्वयं संकुचित है तथापि इसने मेरे नेत्र-हृदय एवं रोमांचों को विशाल बना दिया, या (स्फार)=फाड़ दिया अर्थात् निबन्ध सुनकर आश्चर्य से मैं नेत्र फाड़ कर देखने लगा, प्रेम से हृदय विशाल हो गया, आनन्द से उत्कट रोमांच हो आया ।।१६।।

मैमांसिकैकविषये विषये तिशुष्के,
श्रुत्वा प्रसाद रचनां हृदि चिन्तयामि ।
'काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि,'
'यत्ने कृते पि नहि चारुतरं करोमि' ।।२०।।

शुष्क मैमासिक विषय में भी आपकी प्रसादगुणयुक्त सरस रचना को सुनकर सोचता हूं कि मैं भी तो कविता कर लेता हूं पर ऐसी रचना नहीं कर सकता, कितना भी सिर पटकूं इतनी सुन्दर नहीं बन पातीं ।

यहाँ उत्तरार्ध भोजप्रबन्ध का है ।।२०।।

श्रुत्वैव पद्यं प्रथमं त्वयोक्तं,
मुग्धाः सदस्याः सदने समस्ताः ।
आलोचनामात्रकृतप्रयत्नाः.
स्वालोचनापात्रमहो ! भवेयुः ।।२१।।

५-२-५६

कवीनामगलद्दर्पः सर्पस्तार्क्ष्यभयादिव ।
रागिणां रागिता जाता, विपक्षस्य विपक्षता ।।२२।।

निबन्ध सुनकर कवियों का घमण्ड नष्ट हो गया, जैसे गरुड़ के भय से सांप भाग जाता है। रागी=गायकों को रागिता=प्रेम हो गया, (विपक्ष=) विरोधियों के (वि-पक्षता=) पक्ष गिर गए ।

प्रथम पाद 'बाणभट्ट का है । यमक अलंकार है ।।२२।।

भ्रूभङ्गः-स्मितपूर्वकं प्रवचनं-सम्मीलनं नेत्रयोः-
हस्तोत्तोलन-मङ्गुलिप्रवलनं-वक्षो-भुजोन्नाहनम् ।
वाक्यांश-स्वर-वर्ण-वाचक-परिच्छेदो-विसर्गाहतः—
र्वक्रादृष्टि-रितस्ततः, समभवद् वाद्यैर्विना नर्तनम् ।।२३।।

निबन्ध पढ़ते हुए आपका कभी तो भौं टेढ़ी करना, मुस्कराते हुए बोलना, आंखें बन्द करना, कभी हाथ उठाना, अंगुलियों का वलयाकार घुमाना, छाती एवं भुजा का विस्तार, स्वर-वर्ण-पद-वाक्यांश का विश्लेषण, विसर्ग पर झटका, वक्रदृष्टि, ये सब ऐसा लगता था मानों विना वाद्यों के नाच हो रहा हो ।।२३।।

श्लोकच्छन्दोपबद्धं यत्, साष्टं, श्लोकशतद्वयम् ।
त्वयाऽकारि न चित्रं ते, श्लोकलक्षं मया कृतम् ।।२४।।

आपने श्लोक नामी छन्द में केवल २०८ श्लोक रचे, इसमें आश्चर्य क्या है ? मैंने आपके लाखों श्लोक (=यशोगान) किए हैं।

तदुक्तं—श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं० ।।२४।।

निबन्धं नव माकर्ण्य, स्मृत्वा चास्यानवद्यताम् ।
अनवस्थित चित्तेन, नव श्लोका मया कृताः ॥२५॥

यहां 'नव' शब्दों के यमक हैं ॥२५॥

उषा देवी

एषा ऽनुराग-सुभगा, मृदुपाटलाभा,
सद्यःप्रबुद्धकलकोकिलकूजिताशा ।
मन्दीकरोति रुचि मिन्दु-कुमुद्वतीनां,
दोषावसानरुचिरा प्रतिभात्युषा मे ॥२६॥

१८-१-६६

यह उषा देवी उषा की तरह मुझे भाती है ।

उषाकालपक्षे—अनुराग सुभगा-अरुणोदय से सुशोभित, मृदुपाटल पुष्पों से सुसज्जित, तत्कालजागीहुई कोयलों के शब्दों से मुखरित, चन्द्र एवं कुमुदिनियों की शोभा को मन्द करने वाली, (दोषा=) रात्रि बीत जाने से सुन्दर, यह प्रभात मुझे भाती है ।

उषादेवी पक्षे अनुराग=प्रेममयी, गुलाब जैसी आभा वाली, कोयलवयनी, चन्द्र-कुमुदिनी से उत्कृष्ट शोभा वाली, (दोष+अवसान रुचिरा=) दोषाभाव से स्पृहणीय, यह उषा देवी मुझे भाती है ।

यहां उपमा अलंकार ध्वनि है ॥२६॥

लेडी डॉक्टर श्रीमती कविता सेठी M.B.B.S.

प्रकृति-प्रत्ययोपेता, सद्वृत्ता साधुसंस्कृता ।
सुवर्णा-सगुणा-ऽदोषा-ऽलंकृता कविता ऽऽवयोः ॥२७॥

अयि भो ! डॉ० राजेन्द्र कुमार सेठ M.B.B.S. आप की पत्नी और मेरी 'कविता' समान है :—

पद	श्रीमती	रचना
प्रकृति प्रत्ययोपेता—	विश्वसनीय स्वभाववाली	धातुप्रत्यययुक्त
सद्वृत्ता—	सुशीला—	रसानुकूल छन्दों वाली
साधुसंस्कृता—	पवित्र संस्कारों वाली—	सुन्दर संस्कृत भाषामयी
सुवर्णा—	रूपवती	रसानुकूलवर्णों वाली
सगुणा—	गुणवती—	तीन गुणों वाली
अदोषा—	दोष रहित—	दोष रहित
अलंकृता—	भूषणयुक्त—	अलंकारों वाली
आवयोः—	डा० R०K० सेठ की—	मेरी (गुरुदयालुकी)
कविता—	तदाख्या पत्नी—	रचना

॥२७॥

कालिदासः—

उपमा कालिदासस्य, न भूता न भविष्यति ।
मानसाब्जविकासाय, कुण्ठताऽऽभारवे गतिः ॥२८॥

इसका अर्थ देखो पृष्ठ १५० पर

श्री १०८ स्वा० कृष्णानन्द
(हरिद्वार)

मया गीता गीता त्वरितमपनीता स्मृतिपथाद्,
इदानीं कल्याणं कथमिव भवेदस्य जगतः ।
इतीवोद्धर्तुं यः पुनरवततारेव विकलान्,
असौ कृष्णानन्दो हृदयसुखकन्दो भवतु मे ॥२९॥

२८-४-५२

गान्धी-महात्मा-मोहनदास कर्मचन्द

कारागारस्थितबहुजनोद्धारको भारतेष्टः,
गीतार्थज्ञो मृदुलयुवतीचीनचीरापहर्ता ।
धेनुक्रौर्याकलुषचरितो वन्दिगेहोद्भवश्रीः,
कस्तूरीष्टः प्रबल यवनान्वीयमानो हृतास्त्रः ॥३०॥

सौराष्ट्रस्थोविकटवधकाविद्धवर्ष्मा (ऽ) सुरारिः,
धीमत्सत्याग्रहिविनमितो ऽसज्जरासन्धभीमः ।
नित्यं चक्रभ्रमणसुभगाश्रान्तबाहु र्नयज्ञः,
कर्मप्रीति र्जयति जगतां मोहनो ऽसौ महात्मा ॥३१॥

युग्मम्

यहां श्लेष द्वारा कृष्ण-गांधी में तुलना की गई है. यथा—

दोनों (जरासन्ध एवं अंग्रेज के) कारागार से बहुजनों को छुड़ाने वाले हैं, दोनों भारत-मित्र हैं, गीता का अर्थ जानते हैं।

कृष्ण ने गोपसुन्दरियों के चीर हरण किये थे तो गांधी ने भी कई कोमलांगिनियों के विदेशी वस्त्र उतरवा लिए थे। दोनों ने धेनुवध किया तो भी पवित्र रहे, कारागार में इनकी शोभा चमकी, कृष्ण के 'कस्तूरी तिलकं ललाट पटले' था तो गाँधी कस्तूरी बाई का प्रिय पति था, कृष्ण के पीछे कालयवन भागा था तो गाँधी के पीछे मुसलमान चलते थे, दोनों ने शस्त्र छोड़ रक्खे थे ॥३०॥

दोनों सौराष्ट्र वासी थे, दोनों को वधिक ने मारा था, एक असुर+अरि था तो दूसरा सुरा+अरि, कृष्ण की सत्यवादी युधिष्ठिर पूजा करता था तो गांधी की सत्याग्रही लोग, कृष्ण नीच जरासंघ के लिए भीम था तो गांधी बूढ़ा होने पर भी शत्रु भयंकर था, एक सुदर्शनचक्र चलाते थकता नहीं था तो दूसरा अनथक चर्खा चलाता, कृष्ण कर्मयोग का प्रेमी था तो गांधी कर्मचंद का प्रिय पुत्र था, यहां तक कि दोनों का नाम मोहन था ॥३१॥

सौराष्ट्रगो सि, यवनानुगतो सि कामं,
चीनांशुकापनयने निपुणो सि नूनम्।
कारोषितोसि, वधिकास्त्रहतोसि गान्धिन्!,
त्वं मोहनोसि ननु भो! न 'जनार्दनो'सि ॥३२॥

जन+अर्दन=लोकदुःखदायी ॥३२॥

गुरुदयालुः = मैं

जात स्तेजस्विनो मन्दो
दुर्भगो ऽहं पितुः सुतः ।
प्रत्यहं तीर्णनभसो
भानो रिव शनैश्चरः ॥३३॥

मेरे पिता (श्री अनन्तराम) जी एक तेजस्वी व्यक्ति थे, मैं (६ कार्तिक संवत् १९५६ (२२-१०-१८९९ को) उनकी धर्मपत्नी श्रीमतीं लीलावती जी से मन्द-बुद्धि—अभागा पुत्र उत्पन्न हुआ हूं। जैसे कि प्रतिदिन आकाश की पूर्ण परिक्रमा करने वाले तेजोमय सूर्य के यहां मन्द=शनैश्चर ॥३३॥

गौरवहीनो गुरुणा
'गुरु' रिति नाम्ना कृतो स्मि नार्थेन ।
सौरभवासितलोकः
प्रत्युत नैवा 'गुरुः' सो ऽस्मि ॥३४॥

पिताजी ने मेरा नाम तो 'गुरुदयालु' रख दिया, पर मैं वास्तव में गौरवहीन हूँ, यद्वा अर्थेन=आर्थिक दृष्टि से मुझे गौरव नहीं मिला, प्रश्न होता है कि जो गुरु नहीं वह नञ् प्रयोग से 'अगुरु' तो होगा ही, पर मैं तो वह भी नहीं, क्योंकि 'अगुरु' (अगर चंदन) तो स्वय जलकर भी संसार को सुगन्धित कर देता है। पर मैं······· ॥३४॥

नाम्नैव केवलमहं खलु भो 'दयालुर्'
याथार्थ्यतस्तु न 'गुरु' नं हि वा 'दयालुः'।
काप्यस्तु नाम्ना ननु 'चन्द्रकान्ता',
चन्द्रोदये या द्रवतीह सा सा ॥३५॥

भक्तो यातीष्ट सारूप्यं, तेनाहं शम्भुना कृतः।
विरूपाक्षो-सदारोदी; विषादी-शूल भूषणः ॥३६॥

१६-१-६१

कहते हैं कि भक्ति की एक अवस्था में भक्त-भगवान् एकरूप हो जाते हैं, मैं क्योंकि शिव भक्त हूँ अतः उन्होंने मुझे अपना रूप वना लिया है। तद्यथा— वे विरूपाक्ष हैं तो मैं विकृत नयन हूँ वे रुद्र हैं (यदरोदीत्तद्रुद्रस्यरुद्रत्व मित्युक्तेः) तो मैं अपने भाग्यों पर रोता हूँ। वे विषादी=विष खाने वाले हैं तो मैं भी विषादयुक्त हूं। वे शूल से भूषित हैं तो मैं शूल=पीढ़ा से (भू+उषणः) पृथ्वी पर लोटता हूँ ॥३६॥

यमेव देवं भजते मनुष्यः,
तादात्म्यभावं भजते स नूनम्।
पदे पदे तेन लभेऽ र्धचन्द्रं,
सधूर्जटित्वं विषमेक्षणत्वम् ॥३७॥

१६-१-६१

और इसी लिए मुझे अर्धचन्द्र (गलहस्त) मिलते हैं, धूर्जटि, विषमदृष्टि भी हूँ ॥३७॥

हृत्वा मदीयं नयनं हि वामं,
त्वं वामदेव ! प्रथितस् त्रिनेत्रः ।
एकेन चाहं त्वमपि त्रिभिश्च,
संधारयावो विषमेक्षणत्वम् ॥३८॥

२-११-६१

दोषाकरान्वितः; शूली, विरूपाक्षो हि भूषणः ।
निर्गुणः, सार्धचन्द्रश्च त्वमिवाहं महेश्वरः ॥३९॥

३०-४-६४

शिव हैं दोषा-कर+अन्वित=चन्द्रमौलि, मैं हूँ दोष+आकर+अन्वित=अनेकदोषदुष्ट । वे हैं शूलधारी, मुझे होता है शूल (पीढ़ा), वे हैं—विरूपाक्ष अहिभूषण (पन्नगभूषण), मैं हूं—विरूपाक्षः+हि+भू+उषणः । वे निर्गुण हैं तो मुझ में भी कौनसा गुण है ? । उन्हें अर्धचन्द्र मिला है तो मैं भी जहां जाता हूँ (अर्धचन्द्र=गलहस्त=) गलहत्थे मिलते हैं । वे महेश्वर हैं तो मेरे भी कई स्वामी हैं ॥३९॥

हंस=मैं

मुक्ताहारो, ऽनुदारश्च, मानसानन्द वर्जितः ।
वियुक्तो हंस एवास्मि, नीरक्षीरविशारदः ॥४०॥

१९-५-७०

पद्य उभयार्थक हैं—१ हंस=२ मैं।

पद	हंस पक्षे	मैं
मुक्ताहार :—	मुक्ता+आहारः= मोती खाने वाला	मुक्त+आहारः =फाकामस्त
अनुदारः —	दारानुगत=सपत्नीक	उदारताहीन
मानसानन्दवर्जितः :—	मानस सर विहारानंद रहित	मानसिक आनन्द रहित
वियुक्तः —	वि+युक्त=पक्षी सहित	वियोगी
नीरक्षीर विशारदः	दूध का दूध पानी का पानी करने वाला	सदसद् विवेक शून्य (विगता शारदा यस्य)
हंसः एव+अस्मि	हंसनामी पक्षी ही हूँ	अहं+सः+एव+अस्मि मैं वही हूं

॥४०॥

मेघ=मैं

वाष्पायितो, ऽप्रतिष्ठश्च, सम्प्राप्तोच्चाटनो, लघु।
नीरदो, नीरसो, नम्रो, मेघो ऽहं च जड़ात्मकः ॥४१॥

२२-७-६७

(श्लेष से) मैं मेघ भी हूं—

पद	मेघ पक्षे	मैं
वाष्पायित:	भाफ से बना हुआ	आँसुयुक्त=अश्कबार
अप्रतिष्ठ:	अस्थिर	प्रतिष्ठाहीन
सम्प्राप्तोच्चाटन:	ऊंचे उड़ने वाला	निराहत
लघु	जलवर्षा से हल्का	गौरवहीन
नीरद:	नीर+द=जलदाता	निर्+रद:=दन्तहीन
नीरस:	वर्षान्तर जलहीन	रसहीन
नम्र:	वर्षाकाले झुका हुआ	उन्नतिहीन
जडात्मक:	जलात्मा—अति शीत	वज्रमूर्ख

॥४१॥

दुर्गादेवी (मम पूर्व पत्नी)

दुर्गे ! दुर्गे यमद्वारे, गच्छन्त्या शैशवे त्वया ।
मम दुर्गीकृता दुर्गा, दाक्षायिण्येव धूर्जटे: ॥४२॥

२-११-६१

हे दुर्गे !, शैशवे, दुर्गे, यमद्वारे, गच्छन्त्या, त्वया, दुर्गा, मम, दुर्गीकृता, दाक्षायिण्या, धूर्जटे:, इव, इत्यन्वय: ।

हे दुर्गादेवी ! अल्पायु में दुर्गम यमलोक को जाती हुई तूने मुझे असहाय छोड़कर भगवती दुर्गा की शरण में डाल दिया । जैसे दक्षपुत्री मायादेवी ने सती होकर शंकर को ।

यहां यमक-अनुप्रास अलंकार हैं ॥४२॥

इन्दिरा (मम द्वितीय पत्नी)

इन्दिरा मन्दिरेऽन्येषां, बहुधाऽऽयाति याति च ।
पुन र्जन्मन्युपागन्तुं, प्रयाताऽस्माकम् इन्दिरा ॥४३॥

१-३-६८

इन्दिरा=लक्ष्मी औरों के घरों में आती जाती रहती है, पर हमारी इन्दिरा (पत्नी) अगले जन्म में आने के लिए चली गई है।

तदुक्तं माघेन—सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला, पुमांस मभ्येतिभवान्तरेष्ववपि ॥४३॥

आनन्दाश्रूणि मे दत्वा, सुखान्यादाय याऽऽगता ।
सन्तापाश्रूणि मे दत्वा, सुखान्यादाय या गता ॥४४॥

२७-१०-७०

इन्दिरा जब आई थी तो सुख साथ लाई थी एवं मेरी आंखों में आनन्दजन्य आंसू थे, जब गई तो सबकी आंखें सन्ताप के आंसुओं से भरी थीं, एवं सर्व सुख साथ ले गई ॥४४॥

समारोहेममश्मानमश्मवत्त्वं स्थिरा भव ।
विस्मृतं वेदवाक्यं किम् इन्दिरे मन्दिरे मम ? ॥४५॥

हे इन्दिरे ! विवाह में अश्मारोहण के समय वैदिक मन्त्र द्वारा मैंने तुमसे

प्रतिज्ञा कराई थी कि 'इस पाषाण पर चढ़ो और मेरे घर जाकर इस पाषाण की तरह स्थिर हो जाना' अब तुम इसे भूलकर क्यों स्वर्ग सिधार गई हो ?

पद्य का पूर्वार्ध वेद वाक्य है ।।४५।।

दीनानाथ ! जगन्नाथ ! केशव ! स्मरभावन ! ।
साम्यं नौ+इन्दिराकान्त ! तत्कुतोऽहम्+अन्+इन्दिरः ?
।।४६।।

हे इन्दिरापति विष्णु तुम दीनानाथ कहलाते हो तो मैं भी दीन+अनाथ हूं, तुम जगन्नाथ हो सारा जगत् मेरा नाथ है, तुम केशव हो मेरे भी केश हैं। तुम (स्मरभावन) काम के पिता हो तो मैं भी स्मरकिंकर हूं। ऐसे तुम्हारी मेरी समता है पर तुम्हारे पास इन्दिरा है तो मुझसे इन्दिरा क्यों छीन ली गई है ? केवल एक वैषम्य क्यों ? ।।४६।।

विजया B. A. (मेरी पुत्री)

विजया विजयायैव विजया विजया तथा ।
शिवाभ्याम्+इन्द्रदेवाभ्यां प्राप्ता रामै भिषग्वरैः ।।४७।।

शंकर को विजया=भांग, गौरी को विजया=सखी, देवराज को विजय-नामी रथ और विजय=अर्जुन, इन्द्रदेव नामी वर को विजया B. A. मेरी पुत्री, वैद्यों को अलाबुवृत्ता विजया=हर्र, राम को विश्वामित्र से विजया नामी विद्या मिल जाने से उनकी विजय अवश्यम्भावी है।

यहां 'विजया' शब्दों का श्लेष यमक है ।।४७।।

सुवर्णा (स्नुषा)

जन्म प्रभावेण च या सुवर्णा,
रूप प्रभावेण च या सुवर्णा ।
भूषा प्रभावेण च या सुवर्णा
सा मे सुवर्णा सुखदा सुवर्णा ॥४८॥

जन्म से वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मणवर्णोत्पन्ना, रूप के विचार से गौर वर्ण वाली, वेशभूषा में सुवर्णमयी, शुभनामाक्षरों वाली सुवर्णा नाम्नी पुत्रवधू मुझे सुखदायिनी हो । पर............ । यहां यमलालंकार है ॥४८॥

अरुणदेवः (सौवर्णिः पौत्रः)

अरुणाभ्युदयस्तेऽयं विनतानन्दवर्धनः ।
सुवर्णा कर संस्पृष्टः संस्कारैः सुमणेरिव ॥४९॥

९-९-१९६५

जैसे अरुणोदय विनतों का और विनता माता का आनन्दवर्धक होता है, सुवर्ण + आकर = हेमाद्रि से स्पृष्ट होता है, ऐसे हे अरुणदेव तुम्हारा अभ्युदय विनता नामी बहन का आनन्द-वर्धक है, सुवर्णा नाम्नी माता के हाथों से स्पृष्ट है, जैसे शाणोल्लीढामणि चमकती है वैसे मुण्डनादि संस्कारों से तुम्हारी दीप्ति बढ़े ॥ यहां अरुण-विनता-सुवर्णा-संस्कार शब्दों में श्लेष है ॥४९॥

चतुर्विंशति तत्त्वानां परीवारवृतः स्वयम् ।
आत्मैवाहं तटस्थोऽस्मि पञ्चविंशोऽव्ययोःप्रभुः ॥५०॥

१-६-६४

जैसे साँख्य दर्शन की प्रक्रिया से प्रकृति के २४ तत्त्व हैं, और उनका प्राणाधायक आत्मा २५वां तटस्थ-अव्यय-प्रभु है, ऐसे मेरी संतति के २४ घटक हैं (यथा ३ पुत्र ३ वधुएं १ पुत्री, १ जामाता ८ पौत्र ७ पौत्रियां १ दौहित्र= २४) और मैं २५सवां हूँ तटस्थ भी अव्यय भी ।

यह संख्या तात्कालिक है ।।५०।

परन्तु अब—

पुत्रा स्त्रयः पुत्र वधूत्रयं च,
सभर्तृकैका दुहिता द्विपुत्रा ।
पौत्राष्टकं पौत्रवधू, द्वयं च,
पौत्र्यौऽष्टचैकः शिशुकः प्रपौत्रः ॥५१॥

५-६-६६

३ पुत्र, ३ पुतोहू १ पुत्री १ जामाता २ दौहित्र, ८ पौत्र २ पौत्रवधू ८ पौत्रियां नन्हासा १ प्रपौत्र ।

इतना मेरा परिवार है ।।५१।।

पुत्रो ज्येष्ठः, स्नुषा ज्येष्ठा, पौत्रः, पौत्री, तथा, तथा ।
ज्येष्ठा पौत्रवधू, ज्येष्ठः प्रपौत्रो भविता ध्रुवम् ॥५२॥

पुत्रो यज्ञः, स्नुषा रक्षा, पौत्रः, पौत्री, शुको, जया ।
जयदेवः प्रपौत्रश्च, भूयात्पौत्रवधू र्मधु ॥५३॥

२२-४-६६

परिवार्य व्रजन्तीन्दु सप्तविंशति तारिकाः ।
अपवार्य प्रजा मे माम्, सप्तविंशति तारिकाः ॥५४॥

६-६-६६

अश्विनी आदि २७ तारे चन्द्र को परिवार कर घूमते हैं, पर तारने वाली मेरी २७ सन्तानें मुझे 'अपवार्य' (वेरुखी से) चली जाती हैं ॥५४॥

सुतं प्रति

मर्दाजितं त्वदीयं तत्, न मदीयं त्वदर्जितम् ।
स्वस्य स्वस्य कृतोऽनीशो, दायादायास्तु ते शिवम् ॥५६॥

१३-८-६४

धर्मशास्त्र एवं विधान (कानून) के अनुसार पैतृक सम्पत्ति पर सन्तान का अधिकार होता है, पर पुत्र-पौत्रों के संचित धन पर पितृ पितामह का अधिकार नहीं । स्वस्य=अपने, स्वस्य=धन का, और 'दाया-दाया में यमक अलंकार हैं ॥५६॥

गृहानि-यानानि-धनानि-यानि,
वस्तूनि-नाना विध साधनानि ।
मयार्जितं यत् सुत ! तत्त्वदीयं,
त्वदर्जितं यन्नहि तन्मदीयम् ॥५७॥

१७-८-६४

पुत्रवधूं प्रति

यदर्थकृच्छ्रेष्वपि संगृहीतं,
यथा कथंचिद् गृहवस्तु जातम् ।
सर्वं समक्षे ऽधिकृतं वधूभिः
तत्स्पर्श मात्रेपि न मेऽधिकारः ॥५८॥

१३-८-६४

यदि स्नुषे ! विनीतासि, किमेभिरवगुण्ठनैः ? ॥
अथ चेद् दुर्विनीतासि, किमेभिरवगुण्ठनैः ? ॥५९॥

२०-६-६५

लज्जा-विनय वाली होने पर घुंघट की क्या आवश्यकता है ? निर्लज्ज-दुर्विनीत होने पर बहू के घूंघट का क्या उपयोग है ? । लाटानुप्रास अलंकार है ॥५९॥

कुपुत्रं प्रति

श्वशिशुः परिपालितो जनैर्,
असुभिः स्वामिहितं करोत्यहो ! ।
स्वशिशुः श्वशिशोः कथं समः ?,
यदि मत्तः पितरौ न सेवते ॥६०॥

९-१२-६१

कुत्ते का पिल्ला पालो तो वह प्राणपन से आपकी सेवा करेगा, हालां कि आपने उसे केवल पाला है, पैदा नहीं किया। परन्तु जिसे आप जन्म भी देते हैं, पालते भी हैं, वह यदि जनक एवं पालक की सेवा नहीं करता तो इस स्वशिशु (अपने पुत्र) से वह श्वशिशु (कुत्ते का पुत्र) ही अच्छा है ॥६०॥

त्वमेवैको ऽवमन्ता मे, समस्ते जगतीतले ।
अहमेको ऽवमान्यस्ते, समस्ते जगतीतले ॥६१॥

५-३-६४

अनादरो दृष्टिपथं न यापितो,
निरादरो ऽभ्यासकृतो ऽप्युपेक्षितः ।
सोढा अवज्ञा, अधुना प्रतीक्ष्यते,
ऽप्युच्चाटनानन्तर मर्धचन्द्रमाः ॥६२॥

५-३-६४

सुपुत्रं प्रति

स्कंध मारोपितो यो ऽसौ, पयोभिः पालितो मया ।
स्कंध मारुह्य तस्याद्य, स्वादून्यद्मि फलान्यहम् ।।६३।।

२५-२-६७

मैं एक अमरूद का पौधा उठा लाया था उसे गृहोद्यान में बोकर पानी से सींचतारहा । आज उस पर चढ़कर मैं उसके फल खारहा था कि मुझे विचार आया कि एक दिन यह मेरे कन्धे पर था तो आज मैं इसके कन्धेपर बैठा हूँ, कभी इसे मैं पानी देता था तो आज यह मुझे मीठे फल देता है ।

ऐसे जिस पुत्र को मैं कभी कन्धे पर चढ़ाए फिरता था, एवं (पयः) दूध पिला कर जिसे मैंने पाला था आज बुढ़ापे में यह मेरा भार उठाकर शौचादि कराता है, एवं नाना आर्थिक सुख देता है, यह अन्योक्ति है ।।६३।।

पौत्रं प्रति

येषां पुरीषं करसम्पुटेन,
संगृह्य संगृह्य विशोधिता भूः ।
स्कन्धेन चोढा अतिदूरतो ये,
सम्भावयन्त्यद्य न तेऽपि वाचा ।।६४।।

३०-१-६८

दुर्ललित

मातामही मातुरभूद् विमाता,
पितामही मे ऽथ पितु र्विमाता।
माता विमाता मम, तेन युक्तं
पत्नी विपत्नी, विवधू वंधू में ॥६५॥

४-३०-७

कैसा संयोग है कि मेरी नानी परमेश्वरीदेवी सौतेली, दादी कुशालदेवी सौतेली, मां द्रौपदीदेवी भी सौतेली थी। अत्र पत्नी (······) भी सौतेली एवं पुत्रबधू (······) भी सौतेली हो तो ठीक ही है ॥६५॥

नवदृष्टि

पुष्पै र्मधौ मधु प्राप्तं, पादपैः पल्लवा नवाः।
कोकिलैः कामिभिः कामो, मया दृष्टिः पुनर्नवा ॥६६॥

२४-४-१९७०

मोतियाबिन्दु के ऑपरेशन होने के (१४-३-७०) ४० दिन बाद वसन्त में चश्मा लग जाने से मुझे नई दृष्टि मिल गई। जैसे फूलों को नव मधु, एवं वृक्षों को नए पत्ते। पुनर्नवा तु शोथघ्नी त्यमरः ॥६६॥

दृष्टा दीर्घायुषो ऽसन्तः, सन्त श्चाल्पायुषः कलौ।
द्विसप्तत्यायुषः सिद्धं दुर्जनोऽहं न सज्जनः ॥६७॥

पूज्य कविवर मातामह श्री रामरत्न जी

कपिल को (१८ वर्ष की आयु में) लिखे गए एक पत्र का भाग—

श्रीमान्यपादेषु, दयाऽऽकरेषु,
समस्त पूज्येषु, सतां मतेषु ।
भवाब्धि पारावरतीरतुल्ये,
ष्वनेकधासन्त्वभिवादनानि ॥६८॥

१९१८ ई०

मातामहाः ! श्रीगुरवो ! नमो वो,
धीशालिनो ऽथ कुशलं, भवतूभयत्र ।
अत्रास्ति भो ! राजिखुशी सभी हैं,
मद्योग्यसेवां लिखना मुझे भी ॥६९॥

मातामही चाप्यथ-मातुलानी-
श्री धूर्जटि, र्मामशकुन्तलाभ्याम् ।
श्रीद्वारिकानाथवधूः सुशीला,
वाच्या नमो मन्मुखतो ऽनुपूर्वम् ॥७०॥

धूर्जटी—ममेरा भाई, शकुन्तला—भाभी, द्वारिकानाथ—मामा ॥७०॥

कृता प्रतिज्ञा मुझसे भवद्भिः,
साप्ताहि पत्रं लिखते रहेंगे।
त्वमेव पत्रं लिखता नहीं है,
सत्यानृतं तत्र कहें भवन्तः ॥७१॥

शुद्धि निजस्याद्य करूं कहो क्यों ?,
किं मे स्वभावं नहि जानते हो ?।
नो पत्रजातं ऋण मैं सहूंगा,
एकेन चैकस्य जबाब दूंगा ॥७२॥

अस्त्वस्तु दोषी कहलो मुझे ही,
पत्रं भवन्तः लिखते नहीं हैं।
विनैव हेतुं लघवोऽपराद्धाः,
समर्थ को दोष नहीं गुसांई ॥७३॥

० ० ० ० ० ० ० ० ०

मातामह जी के उत्तर का कुछ भाग—

संस्कृत भाषा भाषा, भाषाभाषा (हिन्दी) च संस्कृताभाऽस्ति।
दौहित्र गुरुदयालो ! तव बुद्धि··························॥१॥

लोकाचार स्तावदादौ विचिन्त्यो,
देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या।

लोकद्विष्टं पण्डिता वर्जयन्ति,
तस्माद्विद्वान् लोकमार्गेण यायात् ॥२॥

नास्मद्देशाचारः सुतागृहे प्रेषणं स्वबन्धूनान् ।
लाचार हूं अतः मैं, क्षन्तव्यो मेऽपराधोऽपि ॥३॥

० ० ० ० ० ० ० ० ०

रविकांत 'मधुरः' एम्.ए.बी.टी. के विवाह पर-वर्द्धापन

रवि प्रकाश दिवसः, सुमित्रानन्द वर्धनः ।
युगल-स्नेह-मधुरो, राजते गुरु हर्षदः ॥७४॥

आज सूर्योदयभास्वर दिन शोभायमान् है, जो सन्मित्रों का आनन्द-वर्धक है, दम्पती के स्नेह से मधुर है, एवं महान् आनन्ददायी है ।

दिवसः-राजते । यद्वा हे राज ! अयं दिवसः ते गुरु हर्षदः अस्ति ।

यहाँ श्लेष से रवि=मेरे साले का पुत्र-वर, प्रकाश=वर का पिता, सुमित्रा=वर की माता, युगल=भाई, स्नेह=बहन, मधुर=ज्ञाति, राज=नव वधू, गुरु=मैं, हर्ष=चचेरा भाई, इनका बोध होता है ॥७४॥

कुमारी चन्द्रकला

१. अमृतमसौ चन्द्रकला नयने तनुते प्रदोषवेलायाम्
अमृत मियं चन्द्रकला नयने कर्णो तनोत्यदोषाऽपि ॥७५॥

१३-८-६६

वह (आकाश स्थित) चन्द्रकला प्रदोष (सायं या प्रकृष्टदोष) के समय (केवल) नेत्रों में अमृत सींचती है, परन्तु यह (कुमारी) चन्द्रकला दोष रहित=सुशीला भी नेत्रों के साथ-साथ (मधुर वाणी से) कानों में भी अमृत टपकाती है । यही इनमें व्यतिरेक है ॥७५॥

२. सञ्चीयते चन्द्रकला यथा यथा,
कलङ्कमाविष्कुरुते तथा तथा ।
प्रवर्धते चन्द्रकला यथा यथा,
तथा तथाऽऽविष्कुरुतेऽमलं वपुः ॥७६॥

(शुक्लपक्ष में) चाँद की कला ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों उसमें अधिकाधिक कलंक दीखने लगता है । परन्तु इस चन्द्रकला की आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों इसका निर्मल शरीर निखरता जाता है ॥॥७६॥

प्रकृतिप्रत्ययोपेता सद्वृत्ता साधुसंस्कृता ।
सुवर्णा-सगुणा-ऽदोषा-त्वादृशी ते पदावली ॥७७॥

हे बालिकें ! तुम्हारे निबन्ध की पदावली तुम्हारे जैसी है ।
अर्थ देखो पृष्ठ २२९ पद्य २७ में ॥७७॥

प्रसन्नता सदस्यानां कृता बाले ! त्वयाऽऽत्मसात् ।
होनहार बिरवान के होत है चिकने पात ॥७८॥

गुरुवर्णा-गुरुकुला-गुरुप्रज्ञा-गुरुप्रिया ।
गुरुमध्ये-गुरुश्लाघ्या-लघ्वी केनासि हेतुना ? ॥७९॥

तुम्हारा (ब्राह्मण) वर्ण (गुरु) श्रेष्ठ है, कुल (गुरु) महान् है, बुद्धि विशाल है, गुरुजन की प्यारी हो इन गुरुओं (विद्वानों) के बीच मैं गुरु तुम्हारी प्रशंसा कर रहा हूँ, तो तुम किस कारण लघु हो ? ॥७९॥

धन्यवाद शतानां ते पिता पात्रीकृत स्त्वया ।
उत्पादिता ऽमला येन त्वं चेयं च पद्यावली ॥८०॥

चिन्तामणि देशमुख

नूनं चिन्तामणि श्चिन्ताश्चसपमेक्षते ।
स्वतो देशमुखं चिन्तामणिना द्य प्रकाश्यते ॥८१॥

८-१२-६२

कहते हैं कि चिन्तामणि के चिन्तनमात्र से मनोरथ मिल जाते हैं. पर वह चिन्तासापेक्ष है, परन्तु ये हमारे चिन्तामणि महोदय विना चिन्ता के देश का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं ॥८१॥

किं नु ते दृश्यते देश ! मुखं चिन्तामलीमसम् ।
स्वयं देशमुखश्चिन्तामणि श्चिन्तामणि स्तव ॥ ८२ ॥

हमारे देश का मुख चिन्ता से मलीन=निष्प्रभ क्यों दीख रहा है ? जबकि स्वयं देशमुख चिन्तामणि रूपी चिन्तामणि विद्यमान है ॥८२॥

लोकमान्य बालगंगाधर तिलकः

उन्नते मातृभूभाले तिलकः तिलकायते ।
विशदे भारतीवक्त्रे तिलकः तिलकायते ॥८३॥
जर्जरे देशदेहे ऽपि तिलकः तिलकायते ।
वंशोद्याने पुराणे ऽथ तिलकः तिलकायते ॥८४॥

भगवान् तिलक—

—भारत माता के ऊंचे माथे की (तिलक) विन्दी हैं।
—सरस्वती के उजले मुख पर (तिलक) तिल हैं।
—विदेशी अत्याचार जर्जर भारत के शरीर में (तिलक) फेफड़े जैसे हैं।
—अपने 'तिलक' नामी पुराणे वंश (वाँस) रूपी वंश (कुल) में तिलक नामी वृक्ष के समान लहरा रहे हैं।

यहाँ 'तिलक' शब्द ६ अर्थों में व्यवहृत हुआ है :—

१—वालो गांगाधरि तिलकः, २—टीका, ३—तिल, ४—फेफड़ा, ५—तदाख्य कुल, ६—वृक्ष विशेष। वंश=१ कुल, २ वाँस।

परम्परित मालारूपक अलंकार है ॥८३॥८४॥

दण्डी कविः

पर्वतारोहिणो मार्गे, राज्ञो राज्ये ऽतिदुर्गमे ।
दण्डिनः पदलालित्यं, कवेः काव्ये विलोक्यते ॥८५॥

अर्थ देखो पृष्ठ १५१।

श्री० स्वा० दयानन्दः सरस्वती आर्य समाज प्रवर्त्तकः

१. महर्षि प्रकाण्डो दयानन्द वर्यः,
क्वतज्जीवनं जीवनं जीविनां च ।
गतो ऽगण्यगुण्यं ब्रुवँ स्तच्चरित्रं,
विचित्रं दृषच्चेष्टितं गोष्पयोधौ ॥८६॥

२. जगज्जालमुत्सृज्य सज्जं यति यः,
जगामार्यमार्गेऽ ऽस्खलन् छन्दगामी ।
निबध्नंश्चरित्रं सचित्रं महर्षेः,
श्चयैश्छन्दसां मन्दतां प्रापितो ऽहम् ॥८७॥

३. प्रकाशारुणौ प्राक् ततः सप्तसप्तिः,
कलाभिः क्रमाद्वर्धते शीतरश्मिः ।
क्षणभ्राजिनी राजिनीजनेव,
परं ज्योतिषां तन्महो मन्महो ऽस्तु ॥८८॥

'नहरू' जवाहरलाल

१. नहरौ शासनाध्यक्षे,
न हरौ रमते मनः ।
यः कर्तुम्-अन्यथा कर्तुम्,
अकर्तुमपि च क्षमः ॥८९॥

पण्डित जवाहरलाल 'नहरू' के प्रधान मन्त्री बन जाने पर मेरा मन हरि में नहीं रमता। हालां कि ये दोनों जैसा चाहे करें, न करें, उल्टा-सीधा जैसा-तैसा करें।

ईश्वर का लक्षण है—कुर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं क्षम ईश्वरः ।।८९।।

२. पण्डितेन हरौ प्रीतिः कर्तव्या कमला धवे ।
पण्डिते नहरौ प्रीतिः कर्तव्या कमला धवे ।।९०।।

पण्डित वह है जो कमला पति हरि से प्रेम करे, वैसे 'पण्डित-नहरू' के साथ प्रेम करना चाहिये जो 'कमला देवी' के पति हैं।

पूर्वत्र 'पण्डितेन' तृतीयान्त्य है, उत्तरत्र 'पण्डिते' 'नहरौ' सप्तम्यन्त है। दोनों की पत्नियों के नाम 'कमला' हैं ।।९०।।

फतेह्चन्द्र शर्मा 'आराधकः'

समाचारपत्रै र्जनाराधको यः,
सभाभिः प्रभाभि र्जनाराधको यः ।
समाजोपकारै र्जनाराधको यः,
सदाराध्यभूतः सदाराधकोऽयम् ।।९१।।

१८-५-५९

जो व्यक्ति—समाचार पत्रों द्वारा लोकोपकार करता है।
—एवं प्रभावशाली सभाओं द्वारा जनाराधन करता है।
—और सामाजिक कार्यों से जनता की सेवा करता है।

वह आराधक (सेवक) सदा ही (सद्+आराध्य) सज्जनों का आराध्य=सेव्य है ।।९१।।

आराधको ऽयमाराध्य:, गंगा चोत्तरवाहिनी ।
उल्टे बाँस बरेली को, त्रयं विस्मयकारकम् ॥९२॥

आज आराधक (सेवक भी हमारा) आराध्य=सेव्य बन गया है ।
काशी में गंगा उल्टी (उत्तर की ओर) बहती है ।
लोकोक्ति है कि 'उल्टे बाँस बरेली को'
ये तीनों बातें विस्मय जनक हैं ॥९२॥

फणीन्द्राद् धियं, तेजस श्चापि तेज:,
हरे र्विक्रमं, चन्द्रतो ह्लादकत्वम् ।
द्रवान्नम्रतां प्राप्य चाद्याक्षराणि,
फतेह्चन्द्र आराधको ऽस्तित्व माप्त: ॥९३॥

भगवान् ने 'फतेह् चन्द्र' आराधक को कैसे बनाया ? सुनिये—

फणी=नागराज	से	बुद्धि	और	आद्याक्षर	'फ'	लेकर
तेज=अग्नि	से	तेज	,,	,,	ते	,,
हरि=विष्णु	से	विक्रम	,,	,,	ह	,,
चन्द्र	से	आल्हाद	,,	,,	चं	,,
द्रव=रस	से	नम्रता	,,	,,	द्र	,,

खुदा झूठ न बुलवाए इनमें ये सारे गुण विद्यमान हैं. वर्त्त कर देखिये, 'राह पया जाने या वाह पया जाने' ॥९३॥

भारविः कवि

देखो पृष्ठ १५० ।

मनोरमा (मासिक पत्रिका)

कस्य मनो नहि रमते, परमां रमणीं मनोरमां वीक्ष्य ।
सर्पिषि किं प्रभुता स्याद्, भवति समक्षेऽनले ऽद्रवणे ॥६४॥

माघः कविः

१. असंख्येयै र्गुणै र्माघ ! दीप्यमाने भुवि त्वयि ।
ईर्ष्यालवो वदन्त्येवं 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' ॥६५॥
२४-४-३२

इतिहास साक्षी है कि 'इधर माघ कवि' शिशुपाल वध' की रचना कर रहे थे उधर उनकी पत्नी श्रीनगर के बाजार में मूंज की जेवरी वेचकर कुछ पैसों से गृह सामग्री जुटाती थी, उनमें से 'ग्रासादपि तदर्धार्धं कस्मान्नो दीयतेऽर्थिषु' के अनुसार कवि दान भी करते । एक दिन अर्थाभाव में खाली जाते हुए भिक्षुओं के साथ ही उन्होंने प्राण छोड़ दिये, उनके अन्तिम वचन थे—

'व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गते ।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्वसार्थः पुनरीदृशः ॥

सुदामा-द्रोण-माघ जैसे विद्वानों की दुर्दशा भारत के आर्य राज्य का कलंक है । एतत्प्रेरणा मूलक ये पद्य हैं । :—

२. शुष्यत्तृणत्रिगुणरज्जुवितान लब्धैः,
कैश्चित्पणैः कलयता निजलोकयात्राम् ।

माघ ! त्वया त्रिगुण काव्य रसैरमूल्यैः,
नीतः प्रियंवद ! वशंवदतां जनोऽयम् ॥९६॥

१८-४-५२

सूखी मूंज की त्रिगुण बटी हुई जेवरी बेचकर मिले हुए कुछ पैसों से अपना निर्वाह करते हुए हे माघ ! तुमने तीन गुणों वाले सरस मधुर व अमूल्य काव्यों से हमें अपने वशीभूत कर लिया है ॥९६॥

३. अर्था न सन्ति यदि माघ कवे गृहेषु,
काव्येषु तस्य ननु गौरव मस्ति तेषाम् ।
यः कर्कश–स्फुटित-नग्न-पदो पि लोके,
गूढैर् मृदु-स्फुट-पदैः कविवन्दनीयः ॥९७॥

१८-४-६२

माघ कवि के घर में अर्थ (धन) नहीं था तो क्या हुआ ? परन्तु उनके काव्यों में तो अर्थ गौरव की यत्र-तत्र भरमार है ही, उसके अपने पद (पैर) यद्यपि नंगे थे, अतः खुरदरे थे, फटे हुये थे, पर हमें देगया है गूढ़-कोमल-स्फुट-पद (शब्द) । अर्थात् उनके काव्यों में पद-ध्वनि=स्फोट गूढ़ है और माधुर्य गुण व्यंजक हैं । अतएव वह कवियों का वन्दनीय है । वह स्वयं कहता है कि 'अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा०'' ।

लोग कहते हैं कि माघ काव्य में कालीदास की[1] उपमा, भारवि का[2] अर्थगौरव, एवं दण्डी का[3] पदलालित्य ये तीनों गुण हैं ॥९७॥

४. व्यर्थार्थिसार्थेन सहैव माघ !,
प्राणां स्त्वयि प्रेषयति स्वकीयाञ् ।
श्मशानभूः-श्रीनगरस्य रौति यत्,
"परोपकाराय सतां विभूतयः" ॥९८॥

याचकों के खाली हाथ लौटने पर माघ के प्राणान्त हो जाने से श्रीनगर की श्मशान भूमि पुकार रही है कि देखो परोपकार के लिये यह एक सज्जन की (विभूतयः) राख है।

विभूति शब्द श्लिष्ट है। १—ऐश्वर्य, २—राख-भस्म ॥९८॥

मॉसी ताटका

धम्मिल्ला जरदृक्षबालजटिला, ग्रीवा महोष्ट्रायता,
दन्ता मार्गनिखातपोलविरला, नासा द्विनालोपमा ।
वक्षोजावपि मेषपुच्छसदृशौ, नाभिः कपर्दोन्नता,
पादौ श्लीपद विभ्रमौ, विजयते मातृष्वसा ताटका ॥९९॥

३०१०-६८

पं० मौलिचन्द्र शर्मा

श्यामाप्रसादाधिगत प्रतिष्ठो,
गणेशतातो जनसंघपूज्यः ।
विद्यानिधि दीनदयालुभावः,
स मौलिचन्द्रो धनद प्रियोऽस्ति ॥१००॥

१६-१५-५४

शब्द	शंकर पक्षे—श्यामा	शर्मा पक्षे
श्यामाप्रसादाधिगत	दुर्गा की कृपा से	श्यामाप्रसादनामी जनसंघ
प्रतिष्ठः	प्रतिष्ठा पाये हुये	के प्रधानानन्तर पदवी प्राप्त
गणेशतातः	गणपति का पिता	गण + ईश = घटनायकों का प्रिय
जनसंघपूज्यः	जनता का पूजनीय	जनसंध का प्रधान
विद्यानिधि	विद्याओं का आकर,	महापण्डित
दीनदयालुभावः	दीनों पर दया करने वाला	श्री पं. दीनदयाल शर्मा की प्रतिमूर्ति (पुत्र)
समौलिचन्द्रः	वह चन्द्रशेखर	मौलिचन्द्र शर्मा
धनदप्रियोऽस्ति	कुबेर का प्रिय मित्र है।	धन देने वालों का प्रिय है।

क्योंकि हमने पुत्र विवाहोपलक्ष में जनसंघ को सौ रुपये दान दिया और शर्मा जी ने हमारा आतिथ्य किया, वहीं यह पद्य लिखा गया ॥१००॥

सेठ रत्नलाल 'सुरेका'

१. सदा रत्नलालायमानानने ऽस्मिन्,
सुरे का महत्ता वरीवर्ति लोके ।
यतो ऽसौ सुरेकान्वये रत्नलाला-
ऽग्रवालोपमां नैव लब्धुं समर्थः ॥१०१॥

९-१-६४

रत्नों के लिये जिसके मुँह से सदा राल टपक रही हो, ऐसे देव में क्या महत्ता है ? क्योंकि वह मर्त्य लोक में 'सुरेका' वंशोत्पन्न रत्नलाल अग्रवाल की उपमा नहीं पा सकता । यद्वा अग्रवाल=भाँड ।

यहाँ 'रत्नलाला' 'सुरेका' पदों के यमक हैं, अग्रवाल शब्द श्लिष्ट है ॥१०१॥

२. कस्ते मानस मन्दिरस्य परिधिं शक्नोति वक्तुं जनः ?,
यस्मिन् मानस मन्दिरं सुविपुलं पूर्वं त्वया कल्पितम् ।
ज्ञातं मर्मरज त्रिकूट सुषमां दृष्ट्वा सुवर्णोज्ज्वलां;
पूर्णं मर्म रमार्जनस्य विधिवत् पौलस्त्यपुर्या इव ॥१०२॥

१०-१-६४

सेठ जी ने (दुर्गा कुण्ड वाराणसी में) इस विशाल 'तुलसी मानस मन्दिर' की रूप रेखा जिस मन में कल्पित की होगी वह इस भवन से अवश्य ही बड़ा होगा, क्योंकि आधेय से आधार बड़ा होना ही चाहिए, तो इनके हृदय की विशालता का वर्णन कौन कर सकता है ? । दूर से ही संगेमर्मर के बने हुये मन्दिरों के तीन सुनहरे शिखरों को देख कर मन में निश्चय हो जाता है कि इनके लक्ष्मी कमाने का मर्म क्या है । रावण की लंका त्रिकूट पर्वत पर थी, सुवर्णमयी भी । मानस-मर्मर शब्दों के यमकालंकार हैं ॥१०२॥

३. दूरेण कूटत्रितयं विलोक्य,
भूयोऽपि भूयो हृदि चिन्तयामि ।

एतत् त्रिशूलं ननु रोपितं स्याद्,
व्योम्न श्च साधो ! हृदयेऽ सतां च ॥१०३॥

सेठ जी ! मन्दिरों के तीन शिखरों को दूर से देख कर वार-बार मन में सोचता हूँ कि आप ने आकाश के एवं दुर्जनों के हृदयों में यह त्रिशूल गाड़ दिया है। 'ननु'शब्द वाच्य उत्प्रेक्षालंकार है ॥१०३॥

४. प्रियानुरागस्य, मनः समुन्नतेः,
नयार्जितानां च दिगन्त सम्पदाम्।
प्रदेश-निर्माण-कलादिकाः क्रिया,
धृतेश्च धीरः सदृशी र्व्यधत्त सः ॥१०४॥

१३-१-६४

सेठ जी ने मन्दिर के लिये—स्थान का चुनाव भवननिर्माण एवं उत्कृष्ट कलाकृति आदि सब कार्य प्रेम-मन की ऊंचाई-धर्मार्जित अपार धन और अपने धैर्य के अनुकूल ही किये हैं। यहाँ तृतीय पाद को छोड़ शेष पद्य रघुवंश के रघुजन्म का है ॥१०४॥

रावणः

१. किं ब्रह्मचिन्तनपरायणशातबुद्धेः,
कैलासतोलनजगद्विजयप्रसिद्धेः।

लङ्काधिपस्य निहतं रघुनन्दनेन,
वाल्मीकिना तु धिषणोर्जित गर्जितानि ॥१०५॥

३०-८-१९७५

राम ने रावण का कुछ भी नष्ट नहीं किया, वाल्मीकि ने तो उसकी वेद-शास्त्रनिष्णात बुद्धि—अलकापुरी एवं अमरावती के विजय की वीरता आदि सर्वस्व नष्ट कर डाला है। उक्तं च—

शस्त्रैर्हता नहि हता रिपवो भवन्ति बुद्ध्या हता स्तु रिपवः सुहता भवन्ति ।
शस्त्रं निहन्ति पुरुषस्य शरीर मेकं प्रज्ञा कुलं च विभवं च यश श्च हन्ति ॥

२. सीतां हृतां न जनरावण एष दत्ते,
जानन् विभीषण रणापनयं कुलघ्नम् ।
वैवस्वतात्मजयुधिष्ठिर–भीम–धन्वि–
रामापमान फल मेष्यति चोरुभङ्गम् ॥१०६॥

पद्य द्व्यर्थक है—१ रावण, २ सुयोधन, रावणपक्षे—यह लोकरावण सीता को हरकर ले गया है अब देता नहीं, यह जानते हुए भी कि विद्रोही विभीषण की गद्दारी से कुल नष्ट हो रहा है एवं सूर्यवंशी रणबांकुरे शत्रुभयंकर धनुर्धर राम के अपमान का फल (उरु-भग) महानाश मिलना है।

सुयोधन पक्षे—यह जनता का दुःखदायी पाण्डवों को छल से हरी हुई सीता= खेती योग्य भूमि नहीं लौटाता, जानता है कि युद्ध में विदुर की कुटिल नीति से कुल नाश होगा एवं धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन एवं उनकी पत्नी= द्रौपदी के अपमान का फल ऊरुभंग (जंघा टूटना) होगा ॥१०६॥

सेठ लक्ष्मीनारायण जी केडिया (जबलपुर)

गृहलक्ष्मीयुतो याति, नरनारायणाश्रमम् ।
लक्ष्मीनारायणं द्रष्टुं, लक्ष्मीनारायणः स्वयम् ॥१०७॥

सेठ लक्ष्मीनारायण जी गृहलक्ष्मी के साथ भगवान् लक्ष्मीनारायण का दर्शन करने बद्रीनाथधाम को जा रहे थे। यात्रा की प्रेरणा मैंने की थी और यह पद्य 'पाथेय' रूप दिया था ॥१०७॥।

श्री शंकराचार्य-तिलकौ

शंकरतिलकौ वन्दे स्वतन्त्रमार्गद्वयोपगन्तारौ ।
सूर्याचन्द्रमसाविव, गीतारथधुर्य वृषभौ द्वौ ॥१०८॥
२२-१०-०

भगवान् शंकराचार्य एवं लोकमान्य तिलक को नमस्कार करता हूँ, ये दोनों भगवद्गीता रूपी रथ के खींचने वाले दो महावृषभ हैं, पर हैं दोनों सन्यास योग कर्मयोग रूपी स्वतन्त्र मार्गों पर चलने वाले। तथाचोक्तम्—

'सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिता इति ॥१०८॥

श्री० स्वामी शान्तानन्द श्रवणमठ हरिद्वार

१. क्वचिद् गंगातीरे मणिमय सुतीर्थोपरचना,
चिकित्सौषद्गेहं क्वपिदपि सुवैद्यैरधिकृतम् ।

सभास्थानं दिव्यं क्वचिदथ च विद्युद् व्यजनयुक्,
समाचार ग्रन्थालय विशद शोभा क्वचिदपि //१०९//

२. क्वचिद्रम्योद्यानं विविधतरुपुष्पै रुपगतं,
विशालं श्रीशालं क्वचिदखिलविद्यालयगृहम् /
क्वचिद्देवावासाः क्वचिदपि च विश्रामभवनं,
सदा 'शान्तानन्दो' यति रुपकरोतीह जगतः ॥११०॥
—युग्मम्

३. शारीरं ही पथिक शरणै श्चापि दिव्यौषधै श्च,
विद्यागेहै विबुधसदनै र्मानसं चात्मिकं च/
इत्थं दुःखत्रयमपि महत्संख्यया ऽत्यन्तशांतं,
'शांतानन्दो' कपिल मुनिना स्पर्धते, वर्धते च॥१११॥

कपिल मुनि ने सांख्यशास्त्र की रचना करके १. शारीरिक, २. मानसिक ३. आध्यात्मिक, तीनों दुःखों के अभिघात का उपायमात्र बतादिया है, पर स्वामीजी ने धर्मशालाएं बनवाकर यात्रियों को विश्राम दिया है, औषधालयों से शारीरिक दुःख, देवालयों से मानसिक दुःख, विद्यालयनिर्माणकराकर आध्यात्मिक दुःख (तीनों) नष्ट कर दिए हैं। वचनों से नहीं प्रत्युत कार्य रूप से दुःख नष्ट करके शान्तानन्द जी कपिल मुनि से होड़ करते हैं, परन्तु वढ़ भी गए हैं। अतः व्यतिरेकालंकारः। तदुक्तम्—

ब्रुवते हि फलेन साधवो नतु कण्ठेण निजोपयोगिताम्' ॥१११॥

४. संन्यासेऽपि ख्यातिमान् कर्मयोगी,
भिक्षूपाधौ सत्यपि प्राज्यदाता ।
शान्तानन्दो प्याश्रितानन्ददायी,
यस्तस्मै मे पद्यपुष्पोपहारः ॥११२॥

आप संन्यासी होते हुए भी प्रसिद्ध कर्मयोगी हैं, स्वयं भिक्षु का बाना धारे हुए भी महादानी हैं, स्वयं शान्त+आनन्द (=निरानन्द) होते हुए भी आश्रितों को आनन्दित कर देते हैं। इन्हें मैं इन पद्यरूपी पुष्पों का उपहार देता हूँ। विरोधाभ्यास विषमालंकार हैं ॥११२॥

संस्कृत परिषद् की प्रगति पर विनोदात्मक आलोचना—

१. प्रगतौ नाम का वार्ता अस्याः परिषदो ननु ।
वैनतेयोपमा वेगे, पद मेकं न गच्छति ॥११३॥

२. प्रगतिं कुरुते तीव्रां सर्वाङ्गैः सर्वतोमुखाम् ।
ननु कार्यालयस्थैव, तैलकोल्हूवृषोपमा ॥११४॥

२४-८-६४

उर्दू कवि सागर निजामी

सागर खारा नीर है, सागर कड़वा आब ।
सागर में अच्छे-बुरे, सागर पाक जनाब ॥११५॥

—एकसागर (समुद्र) में खारा पानी है,
—दूसरे सागर (पैमाना) में कड़वा=शराब,
—तीसरे सागर (=गाँव) में अच्छे-बुरे सभी लोग हैं,
—चौथे सागर (शायर साहिब) सर्वथा पाक=पुनीत हैं ।।११६।।

सागरोसि, गभीरोसि, सरसोसि, कलाकारः ।
परैरलंघनीयोऽसि, न क्षारं किन्तु ते ऽन्तरम् ।।११६।।

आपका नाम भी सागर (समुद्र) हैं, आप सरस (रसिक-जलयुक्त) भी हैं, गम्भीर=गहरे भी कलाआकर (चन्द्रकला उत्पादक) भी हैं। परपुरुष आपको लांघ नहीं सकते, किन्तु सागर का अन्तर खारा है आपका हृदय खारा नहीं ।।११६।।

सुधादेवी

सुधा वर्णो सुधा कर्णो, सुधामा, वसुधा सुधा ।
वसुधारा ऽमला स्निग्धा, वसुधाराऽनघा सुधा ।।११७।।

२३-९-६८

सुधा नामी बाला का रंग सुधा=चूना कली जैसा वेश्त है। इसकी वाणी कानों के लिए सुधा=अमृत है। इसका धाम-भवन सुन्दर है। और ह वसुधा+असु+धा पृथ्वी की संजीवनी है। वसुधारा=घृतधारा की तरह निर्मल एवं स्नेहमयी है। वसुधारा=तदाख्य प्रपात जैसी पुनीत है।

यहाँ 'सुधा' शब्द के आठ यमक हैं, एक 'वसुधारा' शब्द का है ।।११७।।

हंसः (मासिक पत्र)

१. समाचारं सारं रसिक रमणीं सभ्यसरणि,
विनोदं चामोदं. शिशुकविनयं दैशिकनयम् ।
पवित्रं सच्चित्रं, प्रचुरहसनं काव्यरसनं,
बुधोत्तंसो हंसः कलयति सतां मानसपथे ॥११८॥
२६-१-१६३२

विद्वानों से शिरोधार्य हंस नामी रसाला सज्जनों के मानसरूपी मानस में ये वस्तुएँ पैदा करता है—समाचारों के सार, रसिकों को प्रसन्न करने वाला सभ्यता का मार्ग, विनोदानन्द, बच्चों की शिक्षा, देशनीति, पवित्र सदाचार, प्रचुर हास्य और काव्य रस ॥११८॥

२. हंसो ऽहंसोऽस्मि संसारेऽसारे दुर्बोध दुर्दिने ।
मानसे मानसे पुंसां मासि मासि रमेत यः ॥११६॥

हिडम्बा

रूक्ष–ह्रस्व–प्रखर–जटिला–धूसर–व्योम केशी,
कम्बुग्रीवा, पटह–जठरा, ऽलाबु-लम्बस्तनाभा ।
नग्न-स्थूल-स्फुटित-चरणा, तीव्र माहिण्ड्माना,
चण्डी, नित्यं मदनवशगा भीमभामा हिडम्बा ॥१२०॥
२७-१०-६८

इति काव्यामृत धारायां मुक्तककाव्ये 'व्यक्तिविवेको' नाम ११ म. तरङ्गः ॥१२०॥

अथ काव्यामृतधारायां

पूर्णाचरितं नाम द्वादशः तरङ्गः १२

यस्मायमाद्यः श्लोकः—

रसालु, लावण्यवती, सखण्डा,
विनाथसर्गैः, रपि या सनाथा।
अपूर्णगाथा, ऽपि च पूर्णवृत्ता,
कविप्रिया स्याद् गुरुनन्दनीयम् ॥१॥

१४-१-६२

पद्य में विरोधाभास है, जिसका श्लेष द्वारा परिहार अभीष्ट है।

विरोधपक्षे—रसालु=रसवती, लावण्यवती लवणस्वादवाली (=नमकीन) और खंडयुक्त मीठी, नाथ के बिना एवं नाथ वाली, अपूर्ण कथा वाली - पूर्ण वृत्तान्त वाली भी।

परिहार पक्षे—रसालु=रसवती अथवा राजा शालिवाहन, लावण्यवती सौन्दर्य वाली या तदाख्या 'लूणा' राणी, सखंडा='तरंग' नामी परिच्छेदों वाली, विना+अथ+सर्गैः=महाकाव्यप्रसिद्ध सर्गों के विना, सनाथा= 'नाथ' नामी संप्रदाय युक्त यह गुरुओं की आनन्दप्रद 'पूर्णचरितावली' कवियों की प्रिया हो। यद्यपि इसकी कथा अपूर्ण ही छोड़ दी गई है ॥१॥

राजवर्णनम्

१. श्रियां निवेशोऽमितविक्रमोद्यमः,
कलेःकलङ्कक्षयकृन्महामतिः ।
समस्तलोकाभयदानदीक्षितो,
बभूव मद्रेष्वथ शालिवाहनः ॥२॥

२. लक्ष्याः शयालु मपहाय दयालुमीशं,
भोगक्षमः शातयिताऽहितानाम् ।
योऽश्रायि शान्तनु रिवात्मजया हि जन्होः,
'को विश्वसेत् स्त्रीषु विमन्दबुद्धिः' ॥३॥

३. लोकापवादस्य चिरागतस्य,
प्रक्षालनायास्य यशोऽम्बुराशौ ।
चलेति लक्ष्मीः चललक्षदक्षं,
यं सर्वदेवात्ममयं समेता ॥४॥

४. सरस्वती क्षीरभुवो र्न सन्निधिः,
कदापि कुत्रापि विभाव्यते बुधैः ।
इति प्रवादो ऽगलदेतयो स्तयोः,
यमंशमर्थेशगुरूतेजसाम् ॥५॥

५. भूवन्वृथा मा मुनिमान्यसूक्तयो.
न ते शपेयुः स्वनिरादरार्दिताः ।
हृदालयैका, भुजपञ्जरा परे—
ति, सन्निधिं यत्र न गच्छतो भिया ।।६।।

६. प्रतापोऽपि यस्याभवत् शान्तिमूलं,
प्रभावो ऽप्यहो ! भीत्यभावैक हेतुः ।
दयार्द्रो ऽपि यो ऽभून्नृशंसो ऽथवा हो !,
समर्थं प्रतीपा भजन्ते ऽनुकूलम् ।।७।।

७. यो देश-जाति-द्विज-सेवया ऽन्त्यः,
वर्णाश्रमाणां भरणाच्च वैश्यः ।
सुशासनात् क्षत्रियमौलिरत्नं,
विद्या तपोभ्यासथवा ऽग्रजन्मा ।।८।।

८. ध्यानेन योगी, विभवेन भोगी,
तपोधनश्चाश्रमरक्षणेन ।
रूपेण कामो ऽपिबलेन रामो,
विश्वाकृते विश्वसृजो ऽन्वगच्छत् ।।९।।

४-६-७८

९. यस्मिन् राजनि राजति द्विजगणः स्वप्नावशेषक्लमो,
भीतिर्नीतिभयावभुग्नहृदया देशान्तरं प्रस्थिता।
ओजो यस्य सहोदरं रणमुखं प्राप्तोत्सवान्तःपुरं,
रङ्गान्तारमणं रणावतरणं स्त्रीक्रीडनं विग्रहः ॥१०॥

युग्मम्
१६१७

१०. विप्रा वेदरताः, शरासनकरा दानेरताः क्षत्रियाः,
क्रय्याणां क्रयविक्रयेषु निरता वैश्या इव सत्याश्रयाः।
शूद्राःशिल्पपरायणा द्विजहिताः सद्भाव सेवारताः,
लोकाः पुण्यरताश्च भीतिरहिताः
काङ्क्षन्ति यस्मिन् जयम् ॥११॥

११. दृष्ट्वा यस्य परंतपं श्रितसुधासाम्यं प्रतापोच्चयं,
श्रुत्वा वृत्तमरिद्धिपेन्द्रदलनं शार्दूलविक्रीडितम्।
प्राक् सेर्ष्यं समुपेत्य तच्छविचयन्यक्कार दुर्धर्षिताश्,
चन्द्रादित्यकरा अवाप्य जडतां
स्फाटिक्यभूताः स्थिताः ॥१२॥

उस राजा के प्रताप-शील देख सुन कर ईर्षालु सूर्यचन्द्रकिरणें उसकी छवि से जा टकराईं और बिल्लौर बन के रह गईं। मानो जड़ीभूत सूर्येन्दु किरणों से स्फटिक बना है ॥१२॥

१२. भास्वान् रक्तः प्रभाते तव विमलयशः-
खेचरोद्गीयमानम्,
आदायादाय मूर्ध्ना प्रतिदिवसमुखं-
शुभ्रित स्त्वद्गुणौघैः ।
श्रान्त्वेन्दौ लम्बयित्वा तदुदधिशयने-
विश्रमीभूय, भूयः,
रात्रिश्रान्तं तमाविश्रमयति,
विभवो ऽहर्निशं ते विचित्रः ॥१३॥

२-१२-७५ वि०

१३. भुजबलजितशत्रो ! न्यक्कृताशेषभीते !,
चरति समरभूमौ धर्मवीरे त्वयीन्द्र ? ।
चलभटपदधूल्याः प्रातराच्छादिते ऽर्के-
सति विलपति सन्ध्याशङ्कया चक्रवाकी ॥१४॥

६-१९१६

स्वनामधन्य गुरुवर श्री० पं० नृसिंहदेव जी शास्त्री ने एक समस्या दी थी—'सूर्योदये रोदिति चक्रवाकी' तब बाल्यावस्था में मुझे पता नहीं था कि—समस्यापद को विकृत नहीं करते, गुरुजी समस्यापूर्ति से प्रसन्न भी हुए एवं उन्होंने यह रहस्य भी बताया । तब मैंने यूं पूर्ति की—

सैन्य प्रयाणोत्थितधूलिपुञ्जैर्,
घनान्धकारे भुवि वर्तमाने ।
प्रदोषशंकाऽऽकुलिता वराकी,
"सूर्योदये रोदिति चक्रवाकी" ॥१५॥

स्तुतिततिकथया किं यद्यथार्थाभिधानास्,
त्वमवसि परिपूर्णाः स्वाः प्रजाः शं प्रधानाः ।
लघुरपि गुरुमाद्यं वर्णयोगः करोति,
परहितनिरतेभ्यो रोचते नात्मलाभः ॥१६॥

पृथ्वीशयान्वैरिगणान् विधाय,
निशङ्कमङ्के रमसे किमासाम् ?
वैमानिकास्ते ऽप्सरसां गणैस्त्वां,
निर्दिश्यमानं क्षितिपा हसन्ति ॥१७॥

अरातिक्रौर्योर्जायित हृदयकृद्रोषविवशः,
तदास्तां यद्दन्तच्छदमभिरणं नाथ ! दशसि ।
खलानां दौरात्म्याद्विपदभिभवत्येव सुजनान्,
क्रमः कोऽयं तत्स्त्रीरदवृतमतो हापयसि यत् ? ॥१८॥

शत्रु दुष्टता करते हैं और तुम असह्यक्रोधातुर होकर अपना अधर दांतों से चबाते हो, ठीक ही है, दुर्जनों की दुष्टता से सज्जनों को दुःख उठाना ही पड़ता है, पर यह क्या बात हुई कि तुम अपना अधर दांतों से काट कर शत्रुस्त्रियों के अधरों को दन्तक्षतों से बचाते हो ? अर्थात् विधवा

हो जाने पर संभोगवंचित हो जाने से उनके अधर दन्तक्षतों मे बच जाते हैं ।।१८।।

उन्नीताः श्रुतयो धृता च धरणी, भिन्नं रिपूणामुरः,
विक्रान्ता बलिनां रमा, श्च शतशो निश्शेषिताः क्षत्रियाः ।
बद्धा वारिधयः प्रलम्बदनुजा भग्नाः समाधौ स्थितं,
म्लेच्छाः सन्निहता स्त्वया विफलिता अद्यावतारा दश ।।१९।।

५-११-३५

वेदों का उद्धार कर भूमिभार नाश कीना,
कई वार शत्रुओं के उर फोड़ डारे हैं ।
महाबलि राजन की छीनलीनी लक्ष्मी,
दुष्ट क्षत्रियों के वंश लाखों रण में संहारे हैं ।
सातों ही समुद्र बांध लीने हैं, प्रलम्ब दैत्य मारे हैं,
अनेकशः समाधि व्रत पाले हैं ।
म्लेच्छ काट दीने, एक जन्म ही में तू ने, तब
व्यर्थ ही हरि ने दश अवतार धारे हैं ।।२०।।

अब सुनिये पूर्ण चन्द्र का बाल्य वर्णन—(व्याज से यज्ञदेव का)

हरि करिहय-गंगातोय-शंखेन्दु चूड—
स्फटिकतुहिनरश्मिः क्षीर-कैलास-हासाः ।
असितजलदखण्डस्पृष्टबालार्कपिण्ड-
द्युतिमनु कुर्युश्चेत्तल्लभेरँस्तदाभास् ।।२१।।

भ्रमाथवा यद्यपि लोचनोर्मयः,
शिखण्डकार्ष्ण्ये तनुशुभ्रताचये ।
भ्रमाय कामं परिणामसमागताः,
कुतो वपुःपाटल हाद्‌र्च मार्दिवम् ॥२२॥

लीला खेल ललाट लोमवलितै र्लास्येऽस्त्यलं लालसा,
लीनार्लिपदलिप्रणालिललिते लोलाविले लोचने ।
लालालेखलवोत्पलांगुलितलै र्लोलल्लतेलालिपिर्,
लालित्यं ललनासु लाति लुलित्तैर्
लोलालको बालकः ॥२३॥

त मीक्षितुं गर्भगृहे निगूढम्,
प्रान्तस्थिता भारतभूमिभागाः ।
उत्कण्ठया विन्ध्यसुमेरुरूपैः,
परस्परेणोच्चतरा बभूवुः ॥२४॥

अथावलोक्येक्षणमार्गरोधं,
चन्द्रो रविश्चाम्बर मध्यरूढौ ।
रात्रिन्दिवन्तस्य दिहृक्षयैव,
पूर्वप्रतिच्यो भ्रमतोऽक्रमेण ॥२५॥

अह भमवमभाग्यः पूतवंशे हिमांशोर,
इयमधिकमुभाभ्यां कष्टसीमानुभूतो ।
अनुगतशिवशूलत्रासता वा शुक्रेन,
ग्रहवशविवशेन द्वादशाब्दं मया वा ॥२६॥

१७ माघ १९७५ विक्रमी

कुत्रगतं ते हसनं, रसनं रम्यं प्रहारि हारि हृदाम् ।
सम्प्रति भूयः श्वसनं, वसनं वा वारि वक्त्र गतम् ॥२७॥

गतस्मिता सीत्कृति विक्लवाक्षरा,
द्विजावलीदीधितिदीपिताम्बरा ।
ममोन्मनःक्षोभकरी शनैः शनैः,
प्रवर्त्यतां प्राणसमान ! भारती ॥२८॥

कदापि ते काकलिगायनोचिते,
गले कठोराक्षरतो व्रणो भवेत् ।
पुरैव लावण्यभरे ऽर्दयत्यलं,
कथं न रोषश्रममौग्ध्य मेष्यसि ? ॥२९॥

गुणानहो ! मे नहि वेत्सि कान्त !
यत्यापतर्कैः परिभूयसे त्वम् ।
पश्यावलाया जगती वशे मे,
सोष्मैः स्तनैः शीतलयामि वक्षः ॥३०॥

न वो गुणानां मुनयो ऽप्यभिज्ञाः,
सत्यं वचो देवि ! तवानुमन्ये ।
भवत्प्रसूता जगतीं जयन्ति,
पयो ऽथवा ऽऽपीय भवन्ति शान्ताः ॥३१॥

अङ्गानि मे दहनपातसुखोचितानि,
जिह्वा सहस्रशकलीभवितुं क्षमा मे ।

मा मा न मां स्पृश न मां स्पृश न स्पृश त्वं,
मत्पापतीव्रदहनो न दहेत्तवाङ्गम् ॥३२॥
३१-१-५४

तापत्रयं वारयितुं यतस्व,
मा मारकः शंकररोषभू भूत् ।
स्त्री लोचनापथ्यजुषामसाध्यं,
शुक्रस्थ मेनं कवयो वदन्ति ॥३३॥
१८-१२-७७ वि०

'दक्षापमान संक्रुद्धरुद्रनिश्वास संभवः ।'
ज्वरो० । शुक्रस्थस्तु न सिद्ध्यतीत्युक्तेः ॥३३॥

सन्यासदीक्षा

लब्ध्वाऽपि जन्म क्षितिपालगेहे,
पुरा त्रयः प्रव्रजिता यथार्थम् ।
बुद्धो जिनोः भर्तृहरिश्च योगी,
श्री पूर्णनाथश्च यति श्चतुर्थः ॥३४॥

विहाय सांसारिकबन्धनानि,
बबन्ध गात्राणि स मेलिपाशैः ।
हित्वा गृहस्थाश्रम भार मेकं,
महाजटाभार मुवाह मूर्ध्ना ॥३५॥

यो ब्रह्मसूत्रं विससर्ज बाल्ये,
दधार कन्थां बहुचीर भाराम् ।
आदेशपाशं व्यसृजद् गुरूणाम्,
आदेशपाशे नियतो गुरूणाम् ॥३६॥

त्यक्त्वां गरागं सुरभिं सुवर्णम्,
भस्मांगरागेण लिलेप देहम् ।
हित्वा स्मितस्पन्दन मोष्टयोश्च,
चिरञ्जपस्पन्दन मर्पयत् सः ॥३७॥

त्यक्त्वा नमस्यां नृपतेर् विभूतिम्,
दधौ विभूतिं विशदां निजाङ्गे ।
सदात्मयोनेः स्मरणं विहाय,
सदात्मयोनेः स्मरणं चकार ॥३८॥

विभूतिं=वैभवं, विभूतिं=भस्म, सदा + आत्मयोनेः = भवोभवस्य, सत्+आत्मयोनेः =परमात्मनः ॥३८॥

पाथोनाथसुतानाथे ! नाथे नाथति नाथते ।
नाथते मेऽथ वैदेहि ! देहि देहि पुलोमजे ॥३९॥
८-२-७६ वि०

पाथोनाथः=समुद्रः, तत्सुता=लक्ष्मीः, तस्या नाथा पत्नी, नाथे= गोरक्षनाथे, नाथति=आज्ञादायिनि सति, नाथते=याचते, नाथते= आशीर्वादिनि, वैदेहि ! तद्देशीये, देहिषु=मर्त्येषु इन्द्राणि ॥३९॥

क्व सरले ! ऽत्र विहाय गताऽसिमाम्,
अयि ! निरीक्षितु मालि ! तमेव किम् ।
विफल मेतदहो ! न वहिः प्रियः,
स तु विलीय मदीयहृदि स्थितः ॥४०॥

चरति वल्लभ एष बताम्बरे,
नहि नही यह तो सखि ! चान्द है ।
शवलनेत्रकटाक्ष मपीक्षते,
हृदय में यह हाय कलङ्क है ॥४१॥

व्रजति मामभिवीक्ष्य च वक्रताँ,
सजनि ! शोभित है तिथि पञ्चमी ।
किमथ मा हसति स्मितपूर्वकम्,
उदित होवत है सखि ! चान्दनी ॥४२॥

कलङ्क इन्दोः कमनीयकान्तेः,
ग्रहग्रहः पूर्णकलावतोऽपि,
सकण्टकत्वं मृदु केतकीनां,
विधेः कटाक्षैः क्व नु नाततायितम् ? ॥४३॥

विधाता सर्वत्र आततायी (दुःखदो) भवती ।
यथा इन्दौ कलंकः ग्रहणंश्च केतकीषुकण्टकाः ॥४३॥

इति गुरुदयालुशर्म प्रारब्धे पूर्णचरित नाम्नि अपूर्णे काव्ये द्वादशः तरङ्गः ॥१२॥

अथ काव्यामृतधारायां अनुवादतरंगः ॥१३।

यस्यायमाद्यः श्लोकः—

अनुवादे परोक्तानां, न कः स्यात् कोपभाजनम् ।
विना द्विभाषकं-बालं-कविं-कीरं- विदूषकम् ॥१॥

२३-१०-६१

कोई किसी के वचन का अनुवाद (नकल) करे तो उस पर क्रोध आता है, परन्तु दुभाषिये-बच्चे-कवि-सुग्गे- (विदूषक)- जौकर नकल करें तो अच्छा लगता है ।

इस तरङ्ग में ऐसे गद्यों-पद्यों-लोकोक्तियों-मुहावरों का भाषान्तर किया गया है जो पुस्तकों में, कवि-सम्मेलनों में, रेडियों में चमत्कार युक्त पाये गए हैं । और यहाँ इनका अकारादि क्रम से संकलन किया गया है ।

अ

२— अजब सुलगती लकड़ियाँ हैं जगवाले ।
मिलें तो आग उगलते, फटे तो धूआं करें ॥२॥

काष्टोल्मुक समा एते विचित्रा लौकिका जनाः ।
संगता उद्वमन्त्यग्निं, धूमायन्ते विघट्टिताः ॥२॥

२-६-६५

३- आर्यसमाज के सत्संगों में गाया जाने वाला मार्मिक भजन

१— अजब हैरान हूँ भगवन् ! तुम्हें क्योंकर रिझाऊं मैं ?।
नहीं वस्तु कोई ऐसी जिसे सेवा में लाऊं मैं ॥

२— करूं किस तरह आवाहन ? कि तुम मौजूद हो हर जां ।
निरादर है बुलाने को अगर घण्टी बजाऊं मैं ॥

३— हे सर्वाधार ! ये समुद्र, पर्वत, भूमि तो तुझ पर आश्रित हैं ।
अब तुम्हारे लिये कैसे कहाँ कैसा आसन बिछाऊं मैं ?॥

४— हे नारायण ! (पर्वत) अलकनन्दा भागीरथी मन्दाकिनी गंगाएँ तुम्हारे चरणों से निकलती हैं, तो फिर आप को आप के पैरों की धोवन से कैसे स्नान कराऊं ? ॥

५— भुजाएं हैं न सीना है, न गर्दन है न पेशानी ।
कि है निर्लेप नारायण ! कहां चन्दन लगाऊं मैं ?॥

६— तुम्हीं हो मूरती में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलों में ।
भला भगवान को भगवान पर कैसे चढ़ाऊं मैं ?॥

७— तुम्हारी जोत से रोशन हैं सूरज चांद औ तारे ।
महा अन्धेर है तुझको अगर दीपक दिखाऊं मैं ?॥

८— लगाना भोग का तुझको, यह इक अपमान करना है ।
खिलाता है जो हम सबको उसे कैसे खिलाऊं मैं ? ॥

९— सांगोंपाँग वेद एवं उनकी शाखाएं सब आप ने रची हैं। और फिर यह वाणी भी तो मुझे आप की ही देन है तो तुम्हें क्या स्तोत्र सुनाऊं ?॥

१०— तुम गुरुओं के भी गुरु हो (महत्तो महीयान्) दयालुओं पर भी दया करते हो (अर्थात् 'गुरुदयालु' हो)। बड़े-बड़े दाता भी तुम्हारे दर के भिखारी हैं, भला कुछेक पैसों की दक्षिणा का लोभ किसे दूं?

११— जो वस्तु जहां न हो उसे वहां ले जाते हैं पर जो यहां वहाँ सब जगह विद्यमान हो उसका 'विसर्जन' कैसे किया जाय ?॥३॥

मूर्त्ति पूजा

१- अहो मे विस्मयो ब्रह्मन् ! कथं त्वां तोषयेयं भोः ?।
न ह्री वस्तु क्वचित् सेवासु यत्तो योजयेयं भोः ॥

आवाहनं

२- कुतोऽद्या वाहयेयं त्वां ? यतो व्याप्तं त्वया सर्वम् ।
निकारोऽयं यदि ह्वानाय घण्टीं वादयेयं भोः ॥

आसनं

३- समुद्राः पर्वता भूमि स्त्वयि ब्रह्मन् प्रतिष्ठन्ते ।
कथं कुत्रासनं कीदृक् त्वदर्थे कल्पयेयं भोः ? ॥

स्नानं

४– भवत्पादाम्बु संभूताऽलका मन्दाकिनी गंगा ।
पदाम्भोभिः कथं नारायण ! त्वां स्नापयेयं भोः ?॥

चन्दनं

५– न बाहू स्तो न वक्षो वा न च ग्रीवा न भालं ते ।
कथं ह्री चन्दनं निर्लेप ! तेऽङ्गे चर्चयेयं भोः ? ॥

पुष्पं

६– भवान् व्याप्नोति पुष्पेषु, भवानेवास्ति मूर्तौ वा ।
कथं ब्रह्मोपरि ब्रह्मैव देवारोहयेयं भो ? ॥

दीपः

७– भवद् भासैव भासन्ते, ऽत्र भास्वान्, चन्द्रमा स्ताराः ।
महानेषो ऽन्धकारश्चेत् प्रदीपं दर्शयेयं भोः ? ॥

नैवेद्यम्

८– भवद्भोगाय नैवेद्यम् भवेदेवापमानाय ।
कथं विश्वम्भरं देवं भवन्तं भोजयेयं भोः ? ॥

स्तोत्रम्

९– त्वया साङ्गाश्च सोपाङ्गाः सशाखा निर्मिता वेदाः ।
मदीया वाक् त्वया दत्ता, स्तुतिं किं श्रावयेयं भोः ? ॥

दक्षिणा

१०– गुरूणां त्वं गुरुः प्रोक्तो दयालूनां दयालु स्त्वम् ।
सदा दातासि दातृणां पणैः किं लोभयेयं भोः ॥

विसर्जनम्

११– विसर्गः संभवेत्तेषाम्, अभावः कुत्रचिद् येषाम् ।
यदत्रामुत्र सर्वत्र, कथं तत्प्रेषयेयं भोः ॥३॥

४– अभी कमसिन हो रहने दो, कहीं खोदोगी दिल मेरा ।
तुम्हारे ही लिए रक्खा है, ले लेना जवां होकर ॥४॥

तिष्ठ तिष्ठतु बालाऽसि, मनो मे लोप्स्यसि क्वचित् ।
सुरक्षितं तवैवार्थे यौवने संग्रहीष्यसि ॥४॥

५– अरसिक सम्भाषणतो रसिकजनैः सहं वरं कलहः ।
लम्बकुचालिंगनतो लकुचकुचापादताडनं श्रेयः ॥

अरसिक गोष्ठी से भली, रसिकों से तकरार ।
ज्यों बूढ़ी के भोग से बाला चप्पलभार ॥५॥

१५–७–७१

६— अश्क आंखों से रवां और जिगर जलता है।
क्या कयामत है कि बरसात में घर जलता है॥

ज्वलति हृदयसार श्चक्षुषोश्चाश्रुधाराः।
नभसि सदनदाहः कोप्यनर्थप्रवाहः॥६॥

७— अब जलते नहीं बेहोश हो जाते हैं पर्वाने॥

अपूर्वो दृश्यते कोपि, कामाग्नि र्जगतीतले।
शलभा नात्र दह्यन्ते, ननु मुह्यन्ति केवलम्॥७॥

११-११-६२

आ

८— ....।
आंखों का था कसूर छुरी दिल पै चल गई॥

दृष्ट मात्रेण कान्तेन, तथास्मि विह्वलीकृता।
छुरिका नेत्रयो र्दोषे, हृदयं खण्डशोऽकरोत्॥८॥

३०-८-६४

६— आना मेरी मजार पर रहना परे परे।
ठोकर से जाग उठते हैं आशिक मरे मरे॥

मत्समाधि मुपागत्य, स्थेयं दूरे त्वया प्रिये !।
प्रेमिणो हि पदाघातै, रुत्तिष्ठन्ति मृता मृताः॥६॥

५-२-६५

इ

१०— इब्तिदाए इश्क में सारी रात जागे।
अल्ला जाने क्या होगा आगे ॥

पूर्वरागे तथौन्निद्र्यं, गात्रसादो-मनोव्यथा ।
रतौ स्थायित्वमाप्तायां विधातः ! किं भविष्यति ? ॥१०॥

१९-६-६२

११— इन्साँ की बदनसीबी, मर के भी नहीं मिटती।
कबर खोदी गई मेरी, तो पथरीली जमीं निकली ॥

दौरात्म्यं भागधेयानां मरणेऽपि न शाम्यति ।
सम्प्राप्ता ऽश्ममयी भूमिः खन्यमाने-शवावटे ॥११॥

२-६-६४

१२— इश्क पर जोर नहीं है, ये वो आतिश गालिब ।
जो लगाए न लगे और बुझाए न बुझे ॥ (गालिब)

प्रभुत्वं नानुरागेऽस्ति, कृशानुः सैष गालव ! ।
न ज्वलेज्ज्वाल्यमानो यः, शाम्यमानो न शाम्यति ॥१२॥

४-६-६३

१३— इस तमन्ना में कि तुम दोगे सज़ा।
दिल गुनहगार हुआ जाता है ॥

उत्कण्ठयैतया यत्त्वं, दण्ड मह्यं विधास्यसि ।
अपराधी भवत्येव हृदयं मे बलादिव ॥१३॥

४-६-६३

१४–१– इस भरी दुनिया में कोई भी हमारा न हुआ ।
गैर तो गैर थे अपनों का सहारा न हुआ ।।

२– आसमां कितने सितारे हैं तेरी दुनियाँ में ।
अपनी तकदीर का कोई भी सितारा न हुआ ।।

३– इक मुहब्बत के सिवा और न कुछ मांगा था ।
इस ज़माने को वो भी ग़वारा न हुआ ।।

१– विश्वस्मिन् विश्व एतस्मिन् कश्चिदप्यभवन्न नः ।
परे त्वासन्परे नूनं न स्वेषामाश्रयोऽभवत् ।।

२– अन्तरिक्ष ! परीवारे, ऽसंख्येयास्तारका स्तव ।
अस्माकं भागधेयेषु, न कश्चित्तारको ऽभवत् ।।

३– स्नेहातिरक्तमस्माभिः प्रार्थितं नैव किंचन ।
नापैक्षत खलो लोकः तावन्मात्रमपि ध्रुवम् ।।१४।।

२२-२-६६

उ

१५– उखाड़े झांडके मुर्दा कभी हल्का नहीं होता ।
उत्पाटितेषु शष्पेषु न लघु जायते शवः ।।१५।।

१६– उनको ये शिकायत है कि हम कुछ नहि कहते ।
अपनी तो ये आदत है कि हम कुछ नहीं कहते ।।

कुछ कहने पै तूफान उठा लेती है दुनियाँ ।
अब इस पै कयामत है कि हम कुछ नहीं कहते ।।

एष तेषामुपालम्भो यद्वदामो न किंचन ।
अस्माकं तु स्वभावोऽयं यद्वदामो न किंचन ।।
किंचिदुक्तेऽथ लोकोय माचरत्यत्युपद्रवम् ।
एतावता प्यनर्थोऽयं यद्वदामो न किंचन ।।१६।।

१७– उन्हें भी जोशे उल्फत हो तो लत्फ उट्ठे मुहब्बत का ।
हमीं दिन रात गर तड़पें तो फिर इसमें मज़ा क्या है ? ।।

प्रेमोद्रेकः ततोऽपि स्यात् तदानन्दो रतै र्भवेत् ।
सीदेम चेदहोरात्रं वयमेव स किं रसः ? ।।१७।।

२१-१२-६२

ए

१८– एक हसीना,
लगा है जिसको उन्निस ऊपर एक महीना ।
दांतों तले दबा के होठ, आंखें करके बड़ी बड़ी ।
देख रही है मुझको जैसे, खा जाएगी खड़ी खड़ी ।।

एका सुरूपा ननु षोडशीयम्
तीक्ष्णाग्रदन्तैरधरं दशन्ती ।

विस्फार्य नेत्रे अवलोकते यन्
मां भक्षयिष्यत्यधुना स्थितैव ।।१८।।

२६-२-७०

ऐ

१९– ऐ गम न हँसते आना ना शोरोगुल मचाना ।
सोई अभी अभी है तकदीर आज मेरी ।।

न साट्टहासं प्रविशेह शोक !
मा चापि कोलाहल मत्र कार्षीः ।
अद्य प्रसुप्तान्यधुनाधुनैव,
मद् भागधेयानि सुसंविशन्ति ।।१९।।

४-९-६३

२०– ऐसे न बरस बादल कि वो आ न सके ।
आए तो यूँ बरस कि वो जा न सके ।।

मा मैवं वर्ष मेघ ! त्वं, यन्नागन्तुं क्षमेत सा ।
आगच्छेच्चेत्तथा वर्ष, येन गन्तुं न पारयेत् ।।२०।।

६-४-६५

क

२१– कबावे सीख हैं हम कर्वटें हरसू बदलते हैं ।
जो जल जाता है यह पहलू तो वह पहलू बदलते हैं ।।

इत स्ततो ऽङ्गानि विवर्तयामो,
वयन्तु शूल्यामिषवद् वियोगे ।
पार्श्वे तथाऽस्मिन्नथ दग्धकल्पे,
पार्श्वं द्वितीयं परिवर्तयामः ॥२१॥

५-४-६३

२२– कभी झिलमन गिरा देना, कभी झिलमन उठा देना ।
सितमगर नाजनीनों की, अदा यूं भी, अदा यूं भी ॥
हमें चाहा तो क्यों चाहा ? हमें भूले तो क्यों भूले ।
सजा हम क्यों न दें ? उनकी खता यूं भी खता यूं भी ॥

तिरस्करिण्या अवपातनं वा,
कदाचिदस्या अपसारणं वा ।
नतभ्रुवां साहसदुर्मदानां,
तथापि लीलाथ तथापिलीला ॥

तैः कामिताःस्मो यदि तत्कुतो नु ?
तै र्विस्मृताःस्मो यदि तत्कथं वा ? ।
दीयेत दण्डो न कथं ? स एषां,
तथापि दोषोऽथ तथापि दोषः ॥२२॥

३-६-६५

२३– कभी तो आएगी तूं मेरे दिल की राहों पर ।
तमाम उम्र तेरा इन्तिजार कर लेंगे ॥

आयास्यसि कदाचित् त्वं मन्मन श्चिन्तिते पथि ।
यावज्जीव महोरात्रं प्रतीक्षिष्यामहे वयम् ॥२३॥

२०-७-७०

२४– किसी को मनाने में लज्ज़त वह पाई ।
कि फ़िर रूठ जाने को दिल चाहता है ॥

तथानन्दो मया लब्धः, चाटुकार प्रसादने ।
कोपव्याजं पुनः कर्तुं, यथा चेतो ऽभिवाञ्छति ॥२४॥

७.४-६४-

२५– केशव ! केसन अस करी जस वैरीहुं करे न ।
मृगलोचनी करिवरगमनी 'बाबा' कह कह जात ॥

केशवापकृतं कैशै र्यथा नैव तथारिभिः ।
'बाबा' व्याहृत्य गच्छन्ति प्रमदाः प्राप्त यौवनाः ॥२५॥

७-१-६२

२६– क्या ही शीरीं है तेरे लब की रकीब ! ।
गालियाँ खाके भी बेमज़ा न हुआ ॥ (गालिब)

अहो ! माधुर्यमेतस्मिन्न् अधरे तव विप्रिय ! ।
गाली रपि यदास्वाद्य, वैरस्यं नानुभूयते ॥२६॥

२३-७-६३

२७– खुदा जाने वो क्या समझे, कि बिगड़े इस कदर मुझ पर।
कहा था मैंने इतना ही. मुझे कुछ अर्ज करना है॥

वेत्ति प्रभुस्तैर् अवधारितं किं,
तथाविधं यत्कुपिता वृथा मे।
एतावदेवोक्तमभून्मया यत्,
किञ्चिद्भवद्भ्यः प्रतिवेदनीयम् ॥२७॥

२८—१– चलेंगे तीर जब दिल पर तो अरमानों का क्या होगा ?।
लुटेंगे घर तो फिर इन घरके महमानों का क्या होगा ?॥

२– सुना है इश्क में आते हैं दिन आहों के नालों के।
अगर फसले बहार आई तो दीवानों का क्या होगा ?॥

३– उट्ठा है शोरे मातम शमा तेरे जांनिसारों में।
किसीने पर जला डाले तो परवानों का क्या होगा ?॥

४– अभी तो दिल में पोशीदा हैं वो किस्से मुहब्बत के।
हकीकत हो गई जाहिर तो अफ़सानों का क्या होगा ?॥

५– सुना है जामेउल्फत में वला का जोश है साकी।
अभी तो दिल है काबू में अभी तो होश है बाकी॥
अगर पीके बहक उट्ठे तो मस्तानों का क्या होगा ?॥

१– यदा पतिष्यन्ति शरा हृदीमे,
भवेद् गतिः का नु मनोरथानाम्।

लुण्ठिष्यमाणेषु निकेतनेषु
भवेदवस्था ननु काऽतिथीनाम् ॥
१-१-६३

२– आक्रन्द निश्वास मयान्यहानि,
प्रेम प्रसंगेषु समापतन्ति ।
प्रत्यागते चाथ वसन्तकाले,
ऽप्युन्मादिनां केव भवेदवस्था ?॥
२-१-६३

३– कारुण्यकोलाहल उद्गतोऽयं,
प्राणप्रदेषु त्वयि दीप ! दीर्घः ।
केनापि दग्धा यदि पक्षपङ्क्तिः,
भवेद्गतिः का शलभार्भकाणाम् ?॥
३-१-६३

४– अद्यावधि प्रेमकथानकानि,
रहस्यभूतानि मनोगुहायाम्
यथार्थताश्चेत् प्रकटीभवेयुर्
आख्यायिकानाम् अथ का गतिः स्यात् ?॥
३-१-६३

५– दैवोमदःस्याद् रतिपानपात्रे,
वशे मनोऽद्य ध्रियतेऽवबोधः ।

पीत्वा ऽथ पीत्वा यदि विह्वलाः स्युः,
प्रमादिनां केव भवेदवस्था ॥२८॥

३-१-६८

२९– चाहा करो किसी और को औ काम आएं हम ।
आशिक हैं तेरे बाप के नौकर तो नहीं हैं ॥

काम्येतान्यस्त्वया कान्ते ! कार्यं कर्वामि ते वयम् ।
प्रेमिणो हि वयं ते स्मो न पितु स्तव किंकराः ॥२९॥

१२-११-७०

३०– घर पै मिलो किसी और को चक्कर लगाएं हम ।
आशिक है तेरे बापके बौकर तो नहीं है ॥

गृहे ऽभिनन्दयस्यन्यं वयं कुर्मो गतागतम् ।
प्रेमिणः स्मो वय कान्ते! न पितुस्ते प्रमार्जकाः ॥३०॥

१२-११-७०

३१– चिनगारी जो भड़के, सावन उसे बुझाए ।
सावन जो आग लगाए, उसे कौन बुझाए ॥ (रेडियो)

शाम्यते श्रावणाम्भोदैः प्रज्ज्वलेच्चेत्स्फुलिङ्गिका ।
श्रावणज्वालितो वह्निः कथंकारं प्रशाम्यताम् ॥

१-१०२०२७ वं०

शाम्येत्कथं बियोगाग्नि,र्वर्षासु विद्युताऽऽहितः ।
वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मःशरद्धविः ॥३१॥

देखो—पृष्ठ १२६ पद्य ६

३२– जफ़ाए झेलकर तासीर उल्फ़त की दिखाते हैं ।
हिना की तरह पिस जाते हैं तब हम रंग लाते हैं ॥

कष्टं सहित्वा तव विप्रियाणां,
प्रेम प्रभावं ननु दर्शयामः ।
निष्पीड़ितालक्तकवद यन्तु,
पादेषु रागं भृशमुद्गिरामः ॥३२॥

३१-१२-६२

३३– जनाज़ा रोक कर मेरा, वो इस अन्दाज़ से बोले ।
तुझे कूचा कहा था पर, जहां तुम छोड़े जाते हो ॥

शवयात्रामवष्टभ्य, ममासावेवमब्रवीत् ।
वीथ्या निर्गन्तु मुक्तोऽसि, जगत्त्यक्त्वैव यासि भोः ॥३३॥

१२-११-६२

३४– जब अश्क पी लिये हैं, जब होंठ सी लिये हैं ।
तब पूछती है दुनिया, मुझसे मेरा फसाना ॥

यावदश्रूणि पीतानि, यावदोष्ठौ च मुद्रितौ ।
तावत्पृच्छति लोकोयम्, अस्मानस्मत्कथानकम् ॥

२०-८-६४

३५— जब तवक्को ही उठ गई गालिब !
क्या किसी पै गिला करे कोई ॥

भग्नैवाशालता यावत् निरालम्बाद्य'गालव' ।
उपालब्धुं कथं कोऽत्र केन शक्यो मनीषिणा ॥३५॥

६-४-६३

३६— जमी जुम्बश न जुम्बश गुल मुहम्मद ॥

अपि नाम चलेद् भूमिः पर्वतः सागरः द्रुमः ।
तथापि न चलेदेष 'गुल मोहम्मदः, क्वचित् ॥३६॥

३७— ये कैसी अजब दासतां हो गई है ।
छिपाते छिपाते अयां हो रही है ॥

वृत्तं विचित्रं किमिवात्र वृत्तं ।
गंगोप्यमानं पुनरुक्तमेव ॥३७॥

४-६-६३

३८— जो मुश्किल है तो ये है कि दिल नही है मेरे काबू में ।
मुझे तसलीम है इर्शादे वाइज़ का बजा होना ॥

काठिन्य मेतदेवास्ति, यन्मनो नास्ति मे वशे ।
प्रवक्तु रुपदेशानां स्वीकरोमि प्रमाणताम् ॥३८॥

१४-११-६२

त

३९– तबीबों से मैं क्या पूछूं इलाजे दर्दे दिल अपना? ।
मरज़ जब जिन्दगी खुद हो, तो फिर इसकी दवा क्या है ?

किं वैद्यान्परिपृच्छेयं, प्रतीकारं मनोरुजः ।
रोग श्चेज्जीवनं हि स्याद्भवेत्तस्य किमौषधम् ॥३९॥

१२-११-६२

४०– तिरछी नजरों से न मारो आशके दलगीर को ।
कैसे तीरंदाज हो ? सीधा तो कर लो तीर को ॥

तिर्यग्दृष्ट्या न हन्तव्यः प्रेमी भग्नमनोरथः ।
केयं धानुष्कता बाणं ऋजुकं कुरु बालिशे ! ॥४०॥

४१– तुझे क्या काम है तलवार से तीरों से खंजर से ।
नजर भर से जिसे तुम देख लो वो खुद ही मर जाए ॥

किमस्त्र शस्त्रै स्तव कार्यं मार्ये !,
या दृष्टिमात्रेण भिनत्सि लक्षम् ।
किं चन्द्रबिन्दूडुयनक्रियाभिः
विचक्षणा या चललक्षवेधे ॥४१॥

२-१८-६२

४२– तुझे देखा है मेरी नजरों ने, तेरी तारीफ हो मगर कैसे ?
न जुबां को दिखाई देता है, न निगाहों से बात होती है ॥

सिय शोभा किमि जाय बखानी ? ।
गिरा अनयन, नयन बिन बानी ।। (तुलसी)

दृष्ट्या मे वीक्षितासि त्वं, स्तुतिः स्यात् किन्तु ते कथम्? ।
वीक्षितुं न क्षमा जिह्वा, दृष्टि वंक्तुं न पारयेत् ।।४२।।

३-७-७१

४३—तुम एक हसीन नूर हो, शोला नहीं हो तुम ।
हम जल गए ये अपने मुकद्दर की बात है ।।

चन्द्रकान्ता प्रभासि त्वं, सूर्यकान्ता न दाहिनी ।
विदग्धे ! यद्वयं दग्धा, भाग्यानां सा विडम्बना ।।४३।।

१४-३-६२

४४—तुम्हरा दिल मेरे दिल के बराबर हो नहीं सकता ।
वो शीशा हो नहीं सकता ये पत्थर हो नहीं सकता ।।

भवितुं शक्यते नैव तवेव हृदयं मम ।
स्फटिकं तन्न जायेत, नेदं पाषाणतां व्रजेत् ।।४४।।

४५—तुम्हारी याद आ आकर मेरे नश्तर चुभोती है ।
वगर्ना अब तलक दिल के ये सारे जख्म भर जाते ।।

तव स्मृतीनां हृदये मदीये,
क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम् ।

नो चेदहोभिर्विगतै रियद्भिः
व्रणप्रपूर्ति र्भवितु क्षमासीत् ॥
द्वितीय पाद पंचतन्त्र का है ॥४५॥
११-१०-६६

४६—तुम्हें आता है मेरे प्यार पे गुस्सा ।
मुझे तेरे गुस्से पे प्यार आता है ॥

त्वयि प्रेम करोमीति त्वं कोपं कुरुषे मयि ।
प्राणप्रिये ! तवैतस्मिन्, कोपे प्रेम करोम्यहम् ॥ ४६॥

४७—त्वयि वर्षति पर्जन्ये, सर्वे पल्लविता द्रूमाः ।
अस्माकमर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेषु संशयः ॥

मेघ ! तुम्हारे बरसते नवदलयुत तरु होय ।
हम हैं आक-जवास जो बैठे निज दल खोय ॥४७॥
१७-६-३५

४८—दिल दे के दिल लिया है अहसान क्या किया है ? ।
हृदयं मे त्वमादाय, स्वकीयं दत्तवानसि ।
नोपकर्तु विना मूल्यं, किं वृथैव विकत्थसे ? ॥४८॥
१८-२-६३

४९—दर हकीकत मालिके हर शै खुदा अस्त ।
ईं अमानत चन्द रोज़ा पेश मा अस्त ॥

वस्तुतः सर्व वस्तूनां, ईश्वरो हीश्वरः स्वयम् ।
एतन्न्यासीकृतं तेन, मय्याकिंचिदहर्निशम् ॥४९॥

५०—दिल में तेरी उल्फत के बँधने लगे धागे।
अल्ला जाने क्या होगा आगे ? ॥

हृदि मे तेऽनुरागस्य सूत्रपातो बुभूषति।
रतौ स्थायित्वमाप्तायां प्रभुर्वेत्ति भवेन्नु किम् ? ॥५०॥

११-१२-६२

ध

५१—धौले धौले सब भले धौले भले न केश।
राजा रखे न, रिपु डरे, तिर्या करे न हेत ॥

श्वेतं श्वेतं वरं सर्वं, वरं केशा न केशव !।
राजसेवा न शत्रो र्भीः, न नारी कुरुते रतिम् ॥ ५१॥

७-१-६२

न

५२—न खुदा हि मिला, न वसाले सनम,
न इधर के रहे, न उधर के हुए।
धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का ।

नेश्वरो हि मया प्राप्तो, न वा कान्तासमागमः ।
न गृहस्य न घाटस्य रजकस्यैव कुक्कुरः ॥

६-७-६६

धोबी के कुत्ते को नदी के घाट पर भूख लगी तो वह घर को भागा, धोबिन खाना लेकर घाट की ओर चल चुकी थी, वह वापिस घाट पर आया तो धोबी खाना खा चुका था, कुत्ता भूखा ही रहा। रात धोबी के घर चोर आया तो भूख से क्रुध कुत्ता चुप रहा, इसकी जगह गधा चिल्लाया तो उसकी जो दशा हुई पंचतन्त्र में पढ़िये ॥५२॥

५३—१—नजर का मिल के झुक जाना मुहब्बत की निशानी है।
नये होते हैं अफसाने, अदा चाहे पुरानी है॥

२—छुपाने से नहीं छुपता कभी ये राज़ उल्फत का।
पढ़ी जाए जो आंखों में मुहब्बत वो कहानी है॥

३—काटने को है इकलंबी उमर, औ कट भी जाएगी।
जो तेरे साथ कट जाए घड़ी वो ही सुहानी है॥

१—दृष्टे मिलित्वा नमनं यदेतत्,
नवानुरागस्य नवोऽनुभावः।
भवन्ति नव्यानि कथानकानि,
भवन्तु नामाभिनयाः पुराणाः॥

२—गोपयितुं नैव कदापि शक्यं,
रते रहस्यं विविधापलापैः।
वाच्येत या लोचन पट्टिकायाम्,
आख्यायिका सा प्रणयाभिधाना॥

३–वयो तिदीर्घं ननु यापनीयं,
यास्यत्यवश्यं च यथाकथंचित् ।
याप्येत या नाम तवोपकण्ठं,
शोभाऽवनी सैव घटी प्रशस्ता ॥५३॥

२४-१२-६२

५४ नावाक़िफ़ी नहीं है, बस इतनी दोसती है।
मैं उनको जानता हूँ, वो मुझको जानते हैं ॥

परस्परं परचियो नैव नौ नास्ति केवलम् ।
एतावदेव सौहार्दं, सा मां जानाति ता महम् ॥ ५४ ॥

८.१.६२

५५—निकलना खुल्द से आदम का सुनते आए हैं लेकिन ।
बहुत वे आबरू होकर, तेरे कूचे से हम निकले ॥ (गालिब)

श्रूयते हि पुरा स्वर्गाद्, आदिमस्य बहिष्क्रिया ।
निराकृता परं कान्ते ! वीथ्यास्ते निर्गता वयम्॥५५॥

२२.२.६२

प

५६—पर्वाह अब किसे है जेलो दमन की प्यारो ।
इक खेल हो रहा है फांसी पै झूल जाना ॥
(रामप्रसाद बिस्मिल)

कारा-सर्वस्वहरणं-निग्रहः केन गण्यते ।
बालक्रीडेव संजातं कालपाशोपबन्धनम् ।।५६।।

१४-१०-६२

५७—पहुँचना दाद को मजलूम का मुश्किल ही होता है ।
कभी काजी नहीं मिलता, कभी कातिल नहीं मिलता ।।

जगति विदितनैतद्यत्परैः पीडितानाम् ।
भवति कठिन एव प्रायशो न्यायलाभः ।।
मिलति नहिं कदाचिन् न्यायधर्माधिकारी,
मिलति च न कदाचिद् घातुको वाऽपराधी ।।५७।।

१४-११-६२

५८—पूछा कि सांप सर्व पै चढ़ता है किस तरह ।
पेटी लगाके कमर पै बतला दिया कि यूं ।।

पृष्टा कान्ता कथंकारं सर्पः साले ऽधिरोहति ।
कटिबन्धं कटौ बध्वा सैवमित्युत्ततार माम् ।।५८।।

५-११-७०

ब

५९—बसती में लगता नहीं, सैरा में घबराता है दिल ।
अब कहां लेजा बैठाएं ऐसे दीवाने को हम ।।

बसतौ नैव रमते, शून्येषू द्विजतेमनः ।
कथं कुत्र विनोदः स्याद् उन्मत्तस्यास्य साम्प्रतम् ॥५९॥

६-१०-६२

६०—बातें करो किसी और से औ दिल बहलाएं हम ।
आशिक हैं तेरे बाप के, जौकर तो नहीं हैं ॥

केनचिद् भाषसे ऽन्येन, मनो स्माभि र्विनोद्यताम् ।
प्रेमिणः स्मो वयं कान्ते ! न पितुस्ते विदूषकाः ॥६०॥

६१—वेदंद जमाना तेरा हुआ दुश्मन तो क्या है ? ।
दुनिया में नहीं जिसका कोई उसका खुदा है ॥

किं तेन निर्दयो लोकः शत्रुभूतस्तवास्ति चेत् ? ।
कश्चिन्नैवास्ति यस्येह, बन्धुस्तस्यास्ति शंकरः ॥६१॥

१३-१०-७१

भ

६२—भूख चुराई, नीन्द चुराई, और चुराया चैन ।
हृदय चुराया लाज चुराई, अब न चुराओ नैन ॥

हृता क्षुधा हृता निद्रा मनः शान्तिः हृता प्रिये ! ।
लज्जा हृता हृता ज्ञातिर् नाधुना नयने हर ॥६२॥

११-१-७१

म

६३—मजा आने लगा, उसकी जफाओं में।
या खुदा वो कहीं मेहरवां न हो जाये ।।

प्रमोदानुभवस्तस्याः प्रवृत्तो विप्रियेष्वपि ।
मा यायात् तावदस्मासु विधातः ! सा दयालुताम्।।६३।।

४-१०-६२

६४—मञ्ज़िल मिले, मिले न मिले, इसका गम नहीं।
मञ्ज़िल की जुस्तजू में मेरा कारवाँ तो है ।।

प्राप्येत ते धाम न वेति चिन्ता,
न बाधते मां बदरोबिशाल !
अस्त्येवगम्यस्थलमार्गणार्थं,
सार्थो मदीयो भवदीय मार्गे ।।६४।।

२१ १ ७१

६५—मरने के बाद आंखें खुली की खुली रहीं।
आदत जो पड़ गई थी तेरे इन्तजार की ।।

नेत्रे उन्मीलिते एव स्थिते आस्तां शवस्य वै ।
स्वभावो ऽयं दृढीभूतः प्रतीक्षाभ्यासत स्तयोः ।।६५।।

३१-१-६५

६६—मुझको अगर भूल जाओगे तुम मुझसे अगर दूर जाओगे तुम ।
मेरी मुहब्बत में तासीर है तो खिंच के मेरी ओर आओगे तुम ।।

विस्मरिष्यसि चेन्मा त्वं, मत्तो दूरं गमिष्यसि ।
मम प्रेमप्रभावेणाऽ, ऽकृष्ट स्त्वं मामुपैष्यसि ।।

माँ विस्मरिस्यसि भो यदि त्वं,
मत्तो गमिष्यस्यथवाऽति दूरे ।
प्रेम्णि प्रभावो यदि मेऽभवियत्,
आकृष्ट चित्त स्त्वमुपा गमिष्यः ।।६६।।

२४-१२-६२

६७—मुझे इश्क नहीं वैहशत ही सही ।
यह वैहशत तेरी शोहरत ही सही ।। (गालिब)

माऽस्तु माऽस्तु त्वयि प्रेम, भवेदुन्माद एव मे ।
भवियायं ममोन्मादः, ख्यातिमूलं तव प्रिये ! ।।६७।।

२०-२ ६३

६८— मुझे सताने को नाराज यूं क्यों होती हो ?
मेरा क्या बिगड़ेगा हुलिया तुम्हारा बिगड़ गया ।।

कान्ते कोपेन कान्ते ते को लाभ श्चिन्तित स्त्वया ? ।
हानि र्ममास्तु मा वास्तु स्वं रूपं विकृतं त्वया ।।६८।।

२१.१.७१.

कथमितिचेद् एवम्—

भग्नं भ्रूवलयं कटाक्षविशखाः-
क्रूराः कठोराः कृताः,
कृष्णे अञ्जनरेखयापि नयने-
आग्नेय धारीकृते ।
जाता वागमृता ऽमृता-
ऽधरदला तन्वी लता कम्पते,
त्वत्कोपेन खलीकृता तव तनुः,
का नाम हानि र्मम ॥६९॥

भौं की कमान टूट चुकी है, सौम्यसलोनी नजर रूखी-कठोर
एवं क्रूर हो गई हैं, कजरारे नयन अंगारे हो गए हैं,
अमृतावाणी अमृता (गिलोय) जैसी कड़वी हो गई है,
अधर पल्लव सहित कोमल तन लता कांप रही है,
मेरा क्या बिगड़ेगा हुलिया तुम्हारा बिगड़ गया ॥६९॥

७०— मुश्किल पड़ी तो क्या है ?, मुश्किलकुशा तो है ।
सिर पर पड़ी तो क्या है ? सिर पर खुदा तो है ॥

विघ्नाः सन्तु किमेतेन, विघ्नहर्ता तु विद्यते ।
विपदः सन्तु, शिरसि शरण्यः शरणं शिवः ॥७०॥

७१— मेरी आंखें बनी दीवानी,
पहले लगाई आग हिये में फिर भरलाई पानी ॥

नेत्रयो रुन्मदत्वं मे सखाय: ! पश्यतानयो: ।
हृदि दीपयतश्चाग्निं तोयधाराश्च मुञ्चत: ॥७१॥
३ ९ ६३

७२— मेरे तड़पने को वे दिल्लगी समझे,
किसी की जान जाती है, किसी का दिल बहलता है ॥

परिहासं विजानाति, मम विक्लवतामसौ ।
मनो विनोदयत्येक: प्राणैं रन्यो वियुज्यते ॥७२॥
१२-११-७२

७३— मेरे सामने वाली खिड़की में इक चाँद का टुकड़ा रहता है ।
अफ़सोस ये है कि वो हमसे कुछ उखड़ा उखड़ा रहता है ॥

अस्मत्समक्षायतनो परिष्टाद् वातायने चन्द्रकला स्थितैका ।
परन्तु खेदोत्र महान् यदेषा कुहू विकारं कुरुतेऽस्मदक्ष्णो: ॥७३॥

७४— मेरे हवास इश्क में क्या कम हैं मुंतशिर ।
मजनू का नाम हो गया, किस्मत की बात है ॥

वियोगे किमपर्याप्तं विक्षिप्ता मम चेतना ।
विख्यातं 'मजनू' नाम भाग्यस्यैषा विडम्बना ॥७४॥
१४-१-६२

७५— मैं जब भी अकेली होती हूं तुम चुपके से आ जाते हो

यदा यदाह मेकान्ते भवाम्येकाकिनी क्वचित् ।
तत्र तत्र समायासि, जोषं जोषं तदा तदा ।।७५।।

१२-११-६२

७६— मैं रञ्जोगम छोड़ दूं, मैं उनको भूल जाऊं ।
यूं कह रहे हो जैसे मेरे बस की बात है ।।

खेदं विषादं च परित्यजेयं, तां विस्मरेयं हृदयाधिदेवीम् ।
तथा भवन्तः कथयन्ति नून मेतद्यथाहं प्रभवामि कर्तुम् ।।७६।।

२-१-६४

७७— मैं रो रो के खत लिखती हूँ, और पढ़ पढ़ कर रो लेती हूँ ।।

रोदं रोदं प्रेमपत्रं लिखामि,
पाठं पाठं तच्च रोदिम्यजस्रम् ।।७७।।

१२-११-६३

य

७८— ये खामोशी कहीं जुवाँ न हो जाए ।
ये राज़ दिल अयाँ न हो जाए ।।
खामोशी नीम रज़ा ।।

न कदाचिद् भवेदेतन्, मौन मेव वचःक्रमः ।
भिन्द्याद् रति रहस्यं मे, 'स्वीकारार्धमभाषणम्' ।।७८।।

१५-१० ६२

७९— ये तर्ज एहसान करने का तुम्हीं को जेब देता है ।
मरज में मुब्तला करके मरीजों को दवा देना ।।

रीति रेषोपकाराणां, तवैव प्रिय ! शोभते ।
यदुत्पाद्य स्वयं रोगान्, व्याधितानां चिकित्सनम् ।।७९

३१-१२-६२

८०— ये हमारी बदनसीबी जो नहीं तो और क्या है ?।
हम हो गए हैं उसके जो न हो सका हमारा ।।

अस्मद् भाग्य विपर्यासो, नायं चेत्कथमन्यथा ।
वयं तदीयाः सञ्जाता, अस्मदीयो न योऽभवत् ।।८०।।

१-६-७०

र

८१— रहिमन चुप हो बैठिये देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आएंगे, बनत न लागे देर ।।

रहीम! चिन्तां जहि तिष्ठ मौनं,
पश्यन्प्रतीपंभ्रमि कालचक्रम् ।
प्रत्यागते चाभ्युदयस्य काले,
सेत्स्यन्ति सर्वा विषमाः समस्याः ।।८१।।

८२— खीरे का सिर काटिये, भरिये नमक बनाय ।
रहिमन कड़ुए मुखन को, चहियत यही सजाय ।।

त्रपुषं शिरसा छित्त्वा, कृत्वा क्षारं च चर्चयेत् ।
रहीम! कटुवक्त्राणां न्याय्यो दण्डो यमीदृशः ।।८२।।

२४-४-६४

८३ - कमलाथिर न रहीम कह, यह जानत सब कोय ।
पुरुषपुरातन की बहू क्यों न चञ्चला होय ।।

स्थिरा भवेन्नो कमला कदाचित्,
जानन्ति सर्वेपि जना रहीम ।
यस्याः पतिः स्यात् पुरुषः पुराणः,
न चञ्चला किंनु भवेद्वधूः सा ? ।।८३।।

२४-४-६४

८४— धूल उड़ावत सीस पर कहु रहीम कहि काज ? ।
जहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूढ़त गजराज ।।

किमर्थमुत्पाद्य रहीम धूलिं,
क्षिपत्ययं स्वे शिरसि द्विपेन्द्रः ? ।
तीर्णा पुरा येन मुने र्वधू स्तद्,
रजो गजोऽन्विष्यति यत्र तत्र ।।८४।।

२९-४-६४

८५— रहिमन! यों सुख होत है, बढ़त देख निज गोत ।
ज्यों बडरी अंखियां निरखि, आंखन को सुख होत ।।

दृष्ट्वा स्वगोत्रं ननु वर्धमानम्,
एवं सुखं स्यात् सुधियां रहीम ? ।

यथा विशाले नयने विलोक्य,
प्रहृष्यतः स्वे नयने नरस्य ॥८५॥

२४-४-६४

८६—जाय समानी उदधि में, गंग नाम भो धीम ।
का की महिमा ना घटी पर घर गए रहीम ॥

समुद्रमासद्य विलीयते तन्,
नामापि नष्टं विबुधापगायाः ।
प्रहीयते वा महिमा न कस्य,
गृहे परेषां गमनाद् रहीम ! ॥८६॥

२४-४-६४

८७— रहिमन वे नर मर चुके जे कहुं मागन जाहिं ।
उनते पहले वे मुए जिन मुख निकसत नाहि ॥

याचितुं ये क्वचिद् याताः,
ते रहीम मृता नराः ।
ते पुरस्तान्मृता स्तेषां,
नेति नेति वदन्ति ये ॥८७॥

३-४-६४

८८— रहिमन याचकता गहे, बड़ेहुं छोट ह्वै जात ।
नारायण को हू भयो, बावन आंगुल गात ॥

याच्ञाग्रहे रहीम ! स्यात्.
लघीयान्सुमहानपि ।
गात्रं नारायणस्यापि,
स्याद् द्वःपञ्चाशदङ्गुलम् ।।८८।।

५-५-६४

८९—जो रहीम छोटे बड़े त्यों अति ही इतराय ।
प्यादे से फरज़ी भयो टेडो टेडो जाय ।।

(शतरंज में 'प्यादा' सीधा एक घर चलता है, और मंत्री आगे पीछे तिरछा भी, प्यादा चलते चलते राजा या मंत्री के घर पहुँच जाय तो वह मंत्री बन जाता है, और टेडा चलने लगता है)

दैवाल्लघुश्चेद् गुरुतां प्रयाति,
स्तब्धो भवत्येव भृशं रहीम ।
लभेत चेन्मन्त्रि-पदं पदातिः,
गतं तिरश्चीनमुपैति नूनम् ।।८९।।

२४-४-६४

९०—लाई हयात आए, कज़ा ले चली चले ।
अपनी खुशी से आए न अपनी खुशी चले ।।

धात्राऽऽनीताः स्म आयाता, वयं यामो यमाहृताः ।
स्वेच्छया न समायाता, न व्रजामः स्वभावतः ।।९०।।

१५-५-७१

ल

६१— लुत्फ आने लगा ज़फाओं में ।
कहीं वो मेहरबां न हो जाएं ॥

प्रमोदानुभवस् तस्याः, प्रवृत्तो विप्रियेष्वयम् ।
मा यायात्तावदस्मासु, विधातः! सा दयालुताम् ॥६१॥
५-१०-६२

६२— लीडरों की धूम है पर फालोअर कोई नहीं ।
सब सिपह सालार हैं आखिर सिपाही कौन है ? ॥

नेतॄणां हि समारोहो, नानुगन्ताऽस्ति कश्चन ।
सर्वे हि सेनापतयः, परं कोऽपि न सैनिकः ॥६२॥
७-७-६२

व

६३— वक्त गुजरे हैं दोनों ही मुश्किल ।
इक तेरे आने से पहले, इक तेरे जाने के बाद ॥

द्वाविमौ समयौ नूनं, महद्दुःखकरौ गतौ ।
एक स्तवागमात्पूर्वः, त्वत्प्रयाणपरः परः ॥६३॥
२५-७-६६

६४— वक्ते मदफन यार आए खाक लेकर हाथ में ।
उम्र भर की दोसती का ये सिला देने लगे ॥

[मुसलमान के शव को गढ़े में रख कर मित्र बान्धव एक-एक मुट्ठी मिट्ठी डालते हैं, जैसे कि हिन्दू के शव को चिता पर रखकर अपने हाथ से लकड़ियां डालते हैं ऐसी प्रथा है ।]

निधानकाले ह्यवटे गतासोर्,
आदाय धूलिं सुहृदः समेताः ।
निर्व्याजमाजीवनमित्रताया,
दातुं प्रवृत्ताः प्रतिशोधमेतत् ॥९४॥
१७-१०-७०

९५– वायदे पे तेरे किसे एतबार था ? ।
तो भी सारी रात तेरा इन्तिजार था ॥

प्रतिज्ञासु सदैकान्ते कान्ते ! ते को नु विश्वसेत् ।
आप्रभातं तथाप्यासीत्, प्रतीक्षा ते प्रतिक्षणम् ॥

वायुवेगप्रतीघातैः कपाटेष्वाहतेष्वपि ।
विडाली चरणापातैस् त्वामेवाशङ्कते मनः ॥९५॥
१६-११-६२

९६ – विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

अये ! धाता ! देव ! प्रणत जन सन्ताप हरण !,
हमारे सारे तूं हर हर सदा पापनिकर ।

त्रिलोकी में जो जो शुभकर गुणों के सदन हों,
हमें सो सो जल्दी वरद !वर देना कर कृपा ।। ९६।।

१७-३-६३

९७- वे दुश्मनी से देखते हैं देखते तो हैं।
मैं खुश हूं कि हूं किसी की निगाह में ।।

पश्यतीत्येव सौभाग्यं शत्रुभावेन यद्यपि ।
बहु मन्तव्यमेवैतच्, चक्षुष्यो ऽस्मीति कस्यचित् ।।९७।।

२२-३-६३

९८— वो आप आये हैं तुर्बत पे फातहा पढ़ने ।
सबाब लूटते हैं खाक में मिलाके मुझे ।।

यम सूक्तस्य पाठाय, चिन्तान्ते ऽसा वुपागतः ।
बिन्दते सुमहत्पुण्यं मां बिधाय स भस्मसात् ।।९८।।

१०-१२-६२

९९- वो आप आए हैं न पल भर भी चैन आई है।
पयाम आते रहे रात भर कज़ा के मुझे ।।

प्राणेशो नागतो नापि क्षणं शान्ति रुपागता ।
आगच्छन्तिस्म संदेशाः कृतान्तस्या निशं मम ।।९९।।

१०-१२-६२

१००— वो कब आए, कब चले गए कुछ याद नहीं है।
आँखों में बसा है--वही दीदार का आलम ।।

आगतश्च गतश्चासौ कदेति न विभाव्यते ।
चक्षुषो र्वर्तते सैव, दर्शनानन्दजा स्थितिः ।।१००।।
८-८-६४

श

१०१— शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले ।
वतन पर मरने वालों का यही आखिर निशाँ होगा ।।
(बिस्मिल)

बलिहार चिताभूमौ प्रतिवर्षं महोत्सवः ।
देशार्थं त्यक्तदेहानां स्मारकत्वे भविष्यति ।।१०१।।
१४-१०-६२

स

१०२— सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है ज़ोर कितना बाजुए कातिल में है।।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां !
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।।

[श्री रामप्रसाद बिस्मिल]

हृदये वर्ततेऽस्माकं शीर्षविक्रयलालसा ।
द्रष्टव्यं हि किय त्तोजो घातुकस्य भुजे स्थितम् ।
प्रतीक्षस्व क्षणं काल ! काले वक्ष्याम एव ही ।
अद्यत्वे नु किमाख्याम: ? किन्नो मनसि वर्तते ॥१०२॥

१४-१०-६२

१०३– सामने बैठ के दिल को जो चुराए कोई ।
ऐसी चोरी का पता, खाक लगाए कोई ॥

उपविश्यैव सांमुख्ये, यदि कश्चि न्मनो हरेत् ।
चौर्यस्यैवंविधस्य स्यात्,कथं भेदोपसूचनम् ? ॥१०३॥

१४-११-६२

१०४– सास्रे मा कुरु लोचने विगलति न्यस्तं शलाकाञ्जनं,
दीर्घं निश्वसितं न मुञ्च सहसा म्लायन्ति पुष्पस्रजः ।
तल्पे मा लुठ कोमलाङ्गि ! तनुतां हन्तांग रागो ऽश्नुते,
नातीतो दयितोपयानसमयो मास्मान्यथा मन्यथा: ॥
निराश अभिसारिका की सखी उसे आश्वासन दे रही है :—

आंखों में मत आंसू लाव सुरमा धोया न जाए कहीं,
ताते सांस न छोड़ तू न कुम्हलाए फूलमाला अभी ।
यूं शय्या पर कर्वटें न बदलो, पौडर् न पोंछो वृथा,
वेला बीत गई न पी मिलन की मानो नहीं अन्यथा ।१०४।

८-५-५२

यद्वा

आंखों में न आंसु लाव सुरमा निकस जासि,
ताते सांस रोको फूल माल म्लान होती है।
शय्या पै न कर्वटें बदल बार-बार वारि,
पौडर लविंडर की शान मात होती है।
उठ न निराश होव, ओछा न हृदय कर,
क्यों तूं निज प्रेम का भरोसा आलि ! खोती है।
बीत न गया है पिय आने का समय अभी,
कुछेक मिनट घड़ी आगे पीछे होती है।।१०४।।

५-८-५२

१०५– सिर झुकाए हैं खडे कातिल मगर आया नहीं।
चोर की सुविधार्थ मैंने द्वार बंद किया नहीं।।

स्थिता वयं शिरोनामं, नायातः किन्तु घातुकः।
पश्यतोहर सौकर्ये मया न द्वार मावृतम्।।१०५।।

१९-११-६२

१०६– स्याहबख्ती में कब कोई किसी का साथ देता है ?।
कि तारीकी में साया भी जुदा इन्सां से रहता है।।

नूनं हि भाग्येषु मलीमसेषु,
कः कस्य साहाय्य मुपाददाति।

यतो ऽन्धकारे भुवि वर्तमाने,
जहाति छायाऽपि निजाऽपि देहम् ॥१०६॥
२६-१-७०

ह

१०७– हमने दिल दे भी दिया, वायदेवफा ले भी लिया।
अब शौक से दे लें जो आप सजा देते हैं ॥

दत्तं चापि मनो ऽस्माभिः प्राप्ता प्रेम प्रतिश्रुतिः ।
दीयता मधुना दण्डो यद्भवान् दातु मर्हति ॥१०७॥
१५-८-७१

१०८– हमें मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन।
दिल के बहलाने को 'गालिब' ये खयाल अच्छा हैं ॥

विद्मः स्वर्गस्य माहात्म्यं भोगस्या प्सरसां तथा ।
परं मनो विनोदाय, गुर्वी 'गालव' कल्पना ॥१०८॥
१३-१-६२

१०९– हुए मरके हम जो रुसवा, हुए क्यों न बुर्दे दरया ? ।
न कहीं जनाजा उठता, न कहीं मजार होता ॥ (गालिब)

मृत्वा पराभवं प्राप्ताः, किं न मग्नाः स्म वारिधौ ?।
शवयात्राऽभविष्यन्नो समाधिभवनं न वा ॥१०९॥

११०–१— है इसी में प्यार की आबरू, वे जफा करें मैं वफा करूं ।
जो वफा भी काम न आ सके, तो वही कहें कि मैं क्या करूं ?॥

२— मुझे गम भी उनका अजीज हैं, कि उन्हीं की दी हुई चीज है।
यही गम है अब मेरी जिंदगी, इसे कैसे दिल से जुदा करूं ?॥
३— जो न बन सके मैं वो बात हूँ, जो न खत्म हो मैं वो रात हूँ।
यह लिखा है मेरे नसीब में कि मैं शम्मा बन के जला करूं॥

१— सम्मान मत्रैव रतेः करोतु,
स विप्रियाण्येवमहं प्रियाणि।
हितानि नो चेत् सफलीभवेयुः,
वदेत् स ही किं करवाणि तत्र॥

२— मम प्रिया तद्विरहव्यथापि,
तेनार्पितं स्मारक वस्तु यस्मात्।
जीवातुभूतः स हि मे विषादः,
कथं नु कुर्यां मनसो बहिस्तम् ॥११०॥
२३-१-६३

३— वार्ताहं सा पूर्णतां या न यायात्,
रात्रिः साहं शीर्णतां या न यायात्।
एतद् धात्रा मेऽङ्कितं भागधेये,
दीपीभूयाहर्निशं यज्ज्वलेयम् ॥११०॥
२४-१-६३

तद्वियोगसमुत्पन्नो, विषादो ऽपि प्रियो मम।
स्मारकत्वेन तद्वस्तु, यत स्तेन समर्पितम् ॥१११॥
१०-११-६२

इति गुरुदयालु शर्मणः कृतौ काव्यामृत धारायां अनुवाद तरंगः ॥१३॥

अथ काव्यामृतधारायां
भारत भारती तरङ्गः ॥१४॥

हिन्दीधाराः—

राजा

धेनु को न मारा है, न पौरुषहु छोड़ा कभी,
छिपके न शत्रुओं को आपने सँहारा है।
प्रखर रण में कभी पीछे न हटे हो ना ही,—
काम वश होकर प्रजा पै हाथ डारा है ॥
जागते हो देशहित सदा ही, न यज्ञ-तप—
दान-व्रत-धर्म-नेम-किसी का बिगाड़ा है।
नशे में न होते चूर, शूर दूर छल से हो,
आपकी तुला में कौन देवता बिचारा है ? ॥१॥

सुनिये सुजान परवश करने का एक–
सरल उपाय हम आपको बताते हैं।
न्याय से-दयामे-दान-मान-सद्भावन से–
प्रेम से-परायन के मन जीते जाते हैं ॥
दण्डों से न बुझती है अगन बगावत की,
ज्वाला कण और हूं प्रचण्ड होते जाते हैं।

लकुच कुचा के कुच निर्दय निपीडन से—
मोटे होते जाते हैं कठोर होते जाते हैं ॥२॥

भग्नपादप

चिड़िये! किधर उड़ी जाती हो क्या मेरी पहचान नहीं,?,
चिर से सूने पड़े हुए, इस जीर्ण नीड़का ध्यान नहीं ?
नन्ही सी थी जब तू तेरे पंख न थे उड़ने के जोग,
तब मेरे कान्धों पर ही तूं फुदक-फुदक करती आमोद ॥

हूं बबूल का पेड़ पुराणा, अशुभ कण्टकाकीर्ण अछाय,
सौरभ सुमन फलों से खाली, शून्य भूमिरुह मादक हाय ।
माना केती बार तुम्हारे कोमल पंख बिगाड़े थे,
माना केती बार तुम्हारे हृदय में कांटे गाड़े थे ॥

तो क्या तूंने चोंच मार कर पत्र न मेरे काटे थे ?,
पदाघात कर निज बीठों से क्या नहि कन्धे पाटे थे ? ।
याद नहीं जब उत्कण्ठा से मेरी ओर उड़ी आती ?,
याद नहीं क्या दूर गई जब मुझ विन थी तूं अकुलाती ॥

नहि तेरे इस शून्य नीड़ में किसी को मैं आने दूंगा,
दावानल की तीव्र ज्वाल में सुख से जल जाने दूंगा ।
मूलोन्मूलित पड़ा हुआ हूं दिन दिन सूखा जाता हूं,
राह रोक के अड़ा हुआ हूं सबके ठेडे खाता हूं ॥३॥

वियोगिन

विरह न सहती है, न तुझ विन रहती है;
न बात कोई कहती है, अकेली बैठ जाती है।
सांस लेती जाती है, न खाना नेक खाती है,
न दिल की बताती है, उलाहने देती जाती है।
रात को न सोती है, सकल दिन रोती है,
न बदन भी धोती है, न बाल भी बनाती है।
वस्त्र भी न पहने, अंग धारती न गहने,
नाहि लागती है कहने, सखीजन को सताती है ॥४॥

पत्रोत्तर

सुन्दर लिखो व लिखो अति ही कुलेख,
रेख देख देख बेखबर मन होता जाता है।
दूज के कुटिल सूक्ष्म चांद की कला को पेख,
जैसे ही चकोर सुध बुध बिसराता है ॥
मीठा बोलो बयन व रूखा औ कठोर बोलो,
मेरे जले दिल पर अमी बरसाता है,
शीतल हो चाहे, चाहे तातो हो सलिल आलि!,
डालते ही जैसे 'गुरु' आग को बुझाता है ॥५॥

५-११-३५

अश्लीलाभास

'मा' का दान करते हो 'धो' का ही कमाई खाते,
'बहन' पै चढ़ते हो औरों को चढ़ाते हो।
प्रात पूजते हो लिंग,' 'भग' को प्रणाम कर
भगवती आगे निज 'भग' को सराहते हो ॥
'दस्त' मुंह पै फेरते ढीठ की ढिठाई देख,
टट्टी बोच बैठकर पेटभर खाते हो ॥
जाते ही 'सुरालय' में 'पान' से प्रसन्न हो वो,
कहे 'कविमन्द' 'बुद्धिमन्द' कहलाते हो ॥६॥

मा=लक्ष्मी, धी=बुद्धि (जीवी) बहन=वाहन, लिंग=शिव, भग=सूर्य,-ऐश्वर्य, दस्त=हाथ, टट्टी=पर्दा, सुरालय=देवालय, पान=ताम्बूल, बुद्धि-मन्द=अक्लमन्द।

होंगे कई पण्डित जो कवियों की कृतियों में,
बुद्धि की तुला से तोल भेद देख लेते हैं।
इनमें से कौन सी है श्रेष्ठ औ निकृष्ट कुछ,।
खूब देख भाल तारतम्य कह देते हैं ॥
हम तो कवित्त पढ़ मन्त्र मुग्ध से हो जाते।
जान सकते न यहां गुण दोष जेते हैं ॥
बाला के कपोल चूम दोनों में से मीठा कौन।
सके निरधार 'गुरु' रसिक वे केते हैं? ॥७॥

पहेलियाँ (अन्तर्लापिका)

हेर फेर से करें गुज़ारा खर्च नहीं कुछ करती है।
चलती रहती है निशिदिन पर कुटिया से न निकलती है॥
कालचक्र में पड़ी पड़ी वो सारा जीवन खोती है।
जिसे पूछ कर काम चले, पर घड़ीघड़ी वो रोती है॥८॥
'घड़ी'

हवा लगे जल जाहि, नीच प्रकृति असार हैं।
सूखा छोड़े नाहि, साम्यवाद में है 'गुरु'॥९॥
'जल'

साम्यवाद=लाइबलिङ्

एक शब्द यदि 'मैं' बोलूं तो औरहु अर्थ निकलता है।
एक शब्द यदि 'तू' बोले तो औरहु अर्थ निकलता है॥१०॥
'मैं तूं'

एक शब्द यदि हिन्दू बोले, फूल बरसते हैं मुंह से।
वही शब्द अंग्रेज कहे तो, मूर्ख कहेंगे सब उससे॥११॥
'फूल'

एक जाति के दो वर्णों का शब्द बने बिगड़े स्वर से।
अर्थ एक का महान् बनाता एक भरे मुंह थूकों से॥१२॥
'लाला'

खाली ही रहती है तो भी, पूर्ण कोश से भारी है।
भरी परायों से जाती है, अपनों से बदमारी है॥

सभी क्रान्तियों की जननी है, प्रियतम से भी प्यारी है।
पति का नाम धराती है वह, अद्भुत ही प्रतिहारी है ॥१३॥

'लैटर बॉक्स'

बच्चों को प्रति दिन मिलती है, बूढ़ों से घबराती है।
तन-धन-यौवन में रहती है, पाँडव को भयदाती है॥
लिखी पढ़ी है पर जड़ ही है, नयी पहेली लाती है।
यथाशक्ति उत्तर दे बेटी ! सन्मुख तोरे आती है ॥१४॥

(शक्ति)

बड़े-बड़े भी ड़र जाते हैं, मुँह माँगा मिल जाता है।
नेत्र विषय होते ही जिसके, मुझे शस्त्र वह भाता है ॥१५॥

आंसू

उर्दू धारा

दोस्त दुश्मन बन गए तब, जब कि किस्मत सो गई।
चांद सूरज हो गया, बस ईद रोज़ा हो गई ॥१६॥

बीमा-पालिसी

बना है प्यार का दुश्मन जमाना।
क्यों न अपने प्यार का बीमा करालें ?॥१७॥

पूर्वोक्त कुछ हिन्दी रचनाएं देखो पृष्ठ
११२, १२०, १२३, १२४, १२४ (ख), २०१, २६४, ३१४, ३१७, ३१८

इति गुरुदयालु शर्मणः कृतौ काव्यामृत धारायां भारत भारती तरङ्गः ॥१४॥

अथ काव्यामृतधारायां प्रकीर्णतरङ्गः ॥१५॥

यस्यायमाद्यः श्लोकः—

प्रकीर्णैर् युवती केशैः,
प्रकीर्णैः कुसुमै धरा ।
प्रकीर्णैः कवयः पद्यै-
र्ह्लादयन्ति पदे पदे ॥१॥

युवती के केश खुले हों तो वह अपनी चाल से कदम-कदम पर आनन्द देती है। पृथ्वी पर फूल बिखरे हों तो उसपर चलनेवाले को कदम कदम पर सुख मिलता है। कवियों के मुक्तक पद्यों में एक एक पद से रस टपकता है। यहाँ 'पदे पदे' शब्दश्लेष है। उपमानोपमेय भाव व्यंग्य है ॥१॥

कविगोष्टीषु कवयः,
मुशाअ़रेषु च शाइराः ।
परस्परं प्रशसन्ते,
अहो ! गीत महो ! ध्वनिः ॥२॥
१४-१२-६९

न तेन वृद्धो भवति, येनास्य पलितं शिरः । (मनुः)
न कविर्जायते वृद्धो, न वृद्धो जायते कविः ॥३॥

काशी में एक सज्जन मुझे कहने लगे कि तुम (६४ वर्ष की) इस अवस्था में भी ऐसी रसीली कविता कर लेते हो। मैंने कहा कि मनु जी कहते हैं कि केश श्वेत होने से किसी को बूढ़ा न समझो, कवि कभी बूढ़ा नहीं होता और बूढ़ा कवि नहीं हो सकता ॥३॥

नापणो विपणौ ख्याते, रोचते जन संकुले।
असाधनाय कवये, कलाकाराय ते नमः ॥४॥
६-१०-६२

दत्वा पदार्थान् लभते पदार्थान्,
यः प्रीणयत्यर्थपतीन्यथार्थम्।
तेभ्यो रसालंकरणानि दत्त्वा,
तेभ्यो रसालंकरणान्युपैति ॥५॥

कवि धनियों को पदार्थ (शब्द+अर्थ) द्वारा प्रसन्न करता है तो वे उसे पदार्थ (धन) से माला माल कर देते हैं। कवि रसालंकारों से उन्हें आनन्दित करते हैं तो वे कवि को रसा (पृथ्वी) एवं अलंकारों (भूषणों) से खुश कर देते हैं। अर्थात् लेन देन बराबर का होता है।

यहां 'पदार्थान्'—रसालंकरणा' शब्दों के यमक हैं ॥५॥

पार्थिवाः पार्थिवै रथैः, चित्रैः शब्दैः पिकाः शुकाः।
द्विधापि शब्दै श्चार्थैश्च, ह्लादयन्ति कवीश्वराः ॥६॥
१८-४-६२

राजा भौतिक अर्थ=धन से ही किसी को प्रसन्न करते हैं, एवं शुक पिक केवल- मीठे शब्दों से ही। पर कविराज शब्दों से भी अर्थों से भी (दोनों तरह ही) जनता को प्रसन्न करते हैं॥ व्यतिरेक है ॥६॥

केचित् सन्ति विवेचकाः कवितयो र्ये तारतम्यं विदुः,
सन्तोल्याथ समादिशन्ति सुधियः श्रेष्ठाऽमुका वाऽमुका ।
शक्ता नैव वय न्तु यत्ननिरता द्रष्टुं तयोरन्तरं,
को जानाति कपोलयो र्मृगदृशः कस्मिन् विशिष्टो रसः ॥७।

६-१-३५

इसका अर्थ देखो पृष्ठ ३२४/७

संस्कृतं शोभते भाषा, संस्कृतं कामिनीमुखम् ।
संस्कृतं शोभते भक्ष्यं संस्कृतं द्विजमण्डलम् ॥८॥

६-१२-६१

स्वर्गे वासो हि मरणं, कथ्यन्ते स्वर्गिणो मृताः ।
संस्कृत स्वर्गिणां भाषा, मृतभाषा ततःस्मृता ॥९॥

(पिरोड़ी) २९-८-६४

मृत्यु को स्वर्गवास कहते हैं और मृत प्राणी को स्वर्गवासी । स्वर्गवासियों की भाषा होने से संस्कृत को मृतभाषा (डैड्लैंग्वेज) कहते हैं ।

जैसे कि वग्भटालंकार में लिखा है – 'संस्कृतं स्वर्गिणां भाषा' ॥९॥

नियतिकृतनियमरहितां,
ह्लादैकमयी मनन्यपरतन्त्राम् ।
नव रस रुचिरां वन्दे,
सुखद-सुवर्णां स्वयौवनावस्थाम् ॥१०॥

१०-१३-७१

जिस अवस्था में किसी नियामक का अनुशासन नहीं चलता था, आनन्द ही आनन्द था, सर्वथा स्वतन्त्रता थी, जो नयेनये रसास्वादन कराती थी जिससे मेरे शरीर का रंगरूप सुन्दर था, मैं ऐसी अपनी यौवनावस्था की स्तुति करता हूं। यहां पहले तीन पाद काव्यप्रकाश के हैं ॥१०॥

मत्स्यण्डिकाभक्षणलोलुपो पि,
मत्स्यण्डिकास्वादपराङ्मुखोहऽम् ।
सुरालये प्रेमपरायणोऽपि,
सुरालये नैव पदं दधामि ॥११॥

११-५-७७

मत्स्यण्डिका (खाँड) खाने में लोलुप हूँ पर मत्स्यंडिका (मत्सी+अण्डिका =मछली—अण्डे नहीं खाता। सुरालय=देवालय का भक्त हूँ पर सुरा+आलय=मद्य खाने में नहीं जाता ॥११॥

रे रे शासक ! जेतु मिच्छसि नु चे च्चेतः प्रजानां सखे !
सद्भावेन ततो जयाथ दयया-दानेन-मानेन च ।
दण्डैः शाम्यतिन प्रजाग्नि रपि तु प्रान्तान्तरुज्जृम्भते ।
तन्व्या निर्दयपीडितावपि भृशं यातः स्तनौ प्रौढताम् ॥१२॥

१४-४-५२ अर्थ देखो पृष्ठ ३२१/२

वसन्ते

कदा पुत्रकेष्टिः कदा रामजन्म,
विवाहो, ऽभिषेकः कदा ऽरण्य यात्रा ।

हृता जानकी, राम राज्यं कदाऽभूत्
वसन्ते, वसन्ते, वसन्ते वसन्ते ॥१३॥
मथुरा नगरी वद केन कृता ?,
प्रमदा-प्रमदा ? भ्रमरी भ्रमरी ?
परभृत् परवत्यपि केन भवेत् ?
मधुना, मधुना, मधुना, मधुना ॥१४॥

२३-८-५५

मधु=१ दैत्य, २ सुरा, ३ शहद, ४ बसन्त ॥१४॥

त्वं सेठ ! देहीति वदन् वदान्ये,
देहित्वमारोपयतीव भिक्षुः ।
शिरः प्रकम्पेन, नकार वाचा,
नाङ्गीकरोतीव धनी नरत्वम् ॥१५॥

भिक्षुक कहता है सेठ तूं 'देहि' पैसा दे, या तूं देही=मनुष्य है, ऐसे उसे आदमी बनाता है, पर धनी सिर हिला कर कहता है –नहीं नहीं, मुझे स्वीकार नहीं मैं आदमी नहीं, हूं ॥१५॥

त्वं देहीति वदन् भिक्षुः स्वं देहित्वं प्रयच्छति ।
मूर्खो धनी न जानाति, पणैः देहिपदक्रयम् ॥१६॥

ताजिया

चर्मोदपेष्वाखुविपाटितेषु,
तृषार्तकण्ठाः सुभटाः पतन्तः।
हा दुग्धधारा नहि पायितास्ते,
घ्नन्त्यस्तनोरो यवना युवानः ॥१७॥

कहते हैं कि अरब देश की 'कर्बला' के रण क्षेत्र में चूहोंने मश्कें कुतर डाली थीं, अतः योद्धाओं को जल न मिल सका, अब प्रति वर्ष शिया संप्रदाय के मुसलमान उस दिन पृथ्वी पर पानी गिराते हैं और पंक्तिवद्ध खड़े होकर अपनी छाती पीटते हैं, मानो उसका भाव हो कि यदि हमारी छाती पर स्तन होते तो हम उन्हें दूध पिलाते एवं प्यासे शहीद न होने देते ॥१७॥

लोहड़ी

सौन्दर्यमुद्रे ! तव को बराकः, भट्टीनिवासी दुलहो वराकः।
प्रश्नोत्तरैः 'हो' यतिपूर्ण मेभिर् नाथन्ति बाला गृहदेहलीषु॥१८॥
प्रयच्छ मात ! बेंहुदारुभागं यागं तवैवाप्नुहि वाजिनागम्।
यच्छोपलानि त्वमियाः सुखानि, आशीरनुप्रस्तमथो लपन्ति॥१९॥
उड्डीय यातः शनकैः चकोरः मातुः गृहे प्राविशदेक चौरः।
इत्यानवाप्यानुलघुप्लवैस्ते धावन्ति धूर्ताः करतालवादैः ॥२०॥

सहायता

श्री रामाश्रम विद्यालय अमृतसर में 'सहायता' के नाम पर पारिश्रमिक मिलता था, एक दिन अध्यापकों में विचिकित्सा हुई कि हम ३० दिन अनथक कार्य करते हैं तो वेतन न होकर यह 'सहायता' क्या बला है ? तब मैंने उन्हें बताया :—

जनमेजय उवाच—

१—किं नाम वेतनं विप्र ! प्रोच्यते का सहायता ? ।
अन्तरं चैतयो र्यत्स्या, त्तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥२१॥

वैशम्पायन उवाच—

२—हन्त ! ते कथयिष्यामि, षडुपायान् धनाप्तये ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ ! नास्त्यन्तो विस्तरस्य वै ॥२२॥

३—वृत्ति, दानं, करः, चन्दा वेतनं च सहायता ।
अस्य दग्धोदरस्यैते उपाया पूरणे मताः ॥२३॥

४—वृत्तिः पण्यादिकोपायः, दानं धर्मध्वजस्य वै ।
राज्ञः करः, तथा चन्दा, नेतॄणां जीविका स्मृता ॥२४॥

५—गृह्यते गलमाक्रम्य, वेतनं तन्निगद्यते ।
यैं यैं कृत्वा तिदीनं या गृह्यते सा सहायता ॥२५॥

१-४-१९३२

वरदान

वनाय राघवं यान्त, मनुयाताः प्रजाजनाः ।
तमसातीर मासाद्य, रामः प्रोवाच तान् जनान् ।।
परागच्छन्तु साकेतं, नरा नार्यश्च मत्प्रियाः ।
भरतं चानुवर्तध्वं, प्रजापालनतत्परम् ।।
'तेषु यातेषु तत्रैव, स्थिता आसन् नपुंसकाः ।
रामेणागत्य पृष्टास्ते, भवद्भिः किमिहास्यते ?।।

क्लीवा ऊचुः—

त्वया दिष्टा स्तदा राम, नरा नार्यः परायणे ।
तृतीयं लिंगमस्माकं, तस्मान्नैव गता वयम् ।।

राम उवाच—

यस्मात्तप्तं तपो दीर्घं वर्षाणि नव पञ्च च ।
निर्वाधं तेन युष्माकं कलौ राज्यं भविष्यति ।।२६।।

खनित्रं-क्षेपणी-छत्रं-व्यजनं-रथरश्मयः ।
शिशुको-दीपिका-कन्या, शोभन्ते ऽन्यकरे धृताः ।।२७।।
४-५-६७

रिस्टवाचं-पराा-यष्टिः-कटका-अङ्गुलीयकम् ।
स्वे हस्ते एव शोभन्ते, स्त्रिया नीवी-कुचाः—कचाः ।।२८।।
५-५-६७

क्षौरं-वैवाहिकं-पानं-प्रशंसा-कुचमर्दनम् ।
अभ्यंङ्गश्चान्नपाकश्च न शोभन्ते स्वयं कृताः ॥२९॥
१८-२-६७

शृग-श्मश्रु-कुचाः शष्पाः कविता-कुसुमं-फलम् ।
जन्म काले न जायन्ते, पौरुषं-यौवनं-जरा ॥३०॥
१-९-६७

अग्रेजी मिश्रिता हिन्दी, पञ्जाबी सिक्ख भाषिता ।
संस्कृतं दाक्षिणात्योक्तं, तिस्रो भाषा बिडम्बनाः ॥३१॥
७-७-६९

न दालचीनी, न च खण्डचीनी,
न चोपचीनी, न च सर्दचीनी ।
सेवे न चीनीचषकं, न चीनी –
चीनांशुकं चीनी, पदाद्घृणा मे ॥३२॥
२०-९-६८

दैवात्

हरि र्हिरण्यकशिपुं, रामो जघ्ने च रावणम् ।
कृष्णः कंसं सवर्णाद्यं, गोडसे गान्धिनं तथा ॥३३॥
रौक्ष्ये पवित्रता दृष्टा, मलं स्नेहे विलोक्यते ।
दृष्टान्तो वसने क्षारं, प्रमाणं चिक्कणं शिरः ॥३४॥
२७-११-७०

स्वयं प्रयुक्तै र्वलयैः स्वकीयै,
रज्जु र्यथा विग्रथिता प्रगुच्छा ।
तथा नरः सीदति नारकीयैः,
स्वयं कृतैः कर्मभि रत्रलोके ।।३५।।

३-१६-६८

षट्शास्त्रार्थी चतुर्वेदी, द्विवेदी जायते यदि ।
यद्वाऽऽरब्धस्य वैफल्यम्, अनर्थस्य च सम्भवः ।।३६।।

२-१२-६६

लोकोक्ति है कि 'चौबे गए छब्बे बनने को दुब्बे बन के आए ।
इसे कहते हैं 'नमाज़ बक्शी न गई, उल्टे रोजे गले पड़ गए ।'
उत्तरार्ध साहित्य दर्पण में विषमालंकार का लक्षण है । ।।३६।।

(उर्दू धारा)

मुझे थे जो निकालते कूचाए यार से ।
वे कूच कर गए हैं खुद खल्के बाजार से ।।३७।।

(छपते-छपते) २६-२-७२

भार श्चौरापेक्षया क्षिप्रकारी,
भोज्यं वा स्यात् सत्वरं चेद्बुभूक्षोः ।
नारी हर्तुं श्चे द्विलम्बासहिष्णुः,
चित्रं ! मर्त्य श्चाशुकृत् स्यात्कृतान्तात् ।।३८।।

'चोर नालों पंड काहलीतिलोकोक्तिः ।।३८।। २६-२-७१

निर्द्वन्द्व

विपत्तौ केषाञ्चिद् द्रवति हृदयं प्रस्तरसमम्,
मृदुत्वं केषांचि त्तदपि भजते सम्पदि नृणाम् ।
विपत्तौ सम्पत्तौ द्रवति न मृदुत्वं न भजते,
समः शत्रौ मित्रे नृपशु रथवाऽयं पशुपतिः ॥३९॥

२७-६-७०

भो भो ! टैलिविजन !

श्रुत्वा 'टरांजिस्टर दूरभाषां ,
कर्णौ हि तृप्तौ न च चक्षुषी मे ।
तयो र्विवादं परिहर्तुं कामः,
समागतोऽहं तव दर्शनाय ॥४०॥
(प्राप्तोऽस्मि 'टैली विजनेक्षणाय)

१६-८-७०

उपजीव्य पद्य यूं है :—

श्रुत्वाति दूरे भवदीयकीर्ति कर्णौ हि तृप्तौ न च चक्षुषी मे ।
तयो र्विवादं परिहर्तुं कामः समागतोहं तव दर्शनाय ॥

साला

सुखं यस्य प्रवेशे स्याद्, वहिरन्तर्गतागते ।
दुःखं निष्कासने यस्य, श्यालः स्तब्धः श्वशिश्नवत्॥४१॥

गौरवं भजतेऽन्तःस्थः, लाघवं च वहिष्कृतः ।
स्वसुः हर्षप्रदः, स्तब्धः, श्याल आवृत्ताशिश्नवत् ॥४२॥

२५-५-७१

बहन के घर अन्दर महान् होता है, बाहर निकाल देने पर हल्का पड़ जाता है, अकड़ा रहता है, बहन को ही आनन्द देता है ; अतः यह बहनोई के शिश्न जैसा है, अर्थात् बहन का लण्ड है ॥४२॥

जयाकांक्षा

जयानन्तबल ! श्याल ! जयावुत्तगुरुंतुद !
जयानन्दप्रदादर्श !, जयान्तर्गतगुह्यक ! ॥४३॥

१-६-७१

श्याल उवाच —

पत्नी त्वदीया भगिनी मदीया,
प्रिया मदीया भगिनी त्वदीया ।
साम्येऽपि सम्बन्धविधौ भिदा नौ ,
प्रत्यक्षत स्तेऽथ परोक्षतो मे ॥४४॥

भ्रान्तिमान्

४५— झुकादो बड़े बड़े नयना हिरण का धोखा होना है,
शिकारी कोई तीर चला देगा ।
छुपालो घुंघट में मुखड़ा चान्दका धोखा होता है,
चकोरा कोइ जान गँवा देगा ।।

नेत्रे संनमय प्रिये मृगदृशो भ्रान्तिः समुत्पद्यते,
कश्चित्कोमलसंनताङ्गि ! मृगयु र्बाणं समुत्स्रक्ष्यति ।
वक्त्रं प्राणसमे ! वगुण्ठय यतश्चन्द्रभ्रमो जायते,
कश्चिन्मानधने ! चकोरयुवकःप्राणान्परित्यक्ष्यति ।।४५।
१.९.६७.

नागिनी

अकर्णहृदया-श्यामा—द्विजिह्वा-मर्मवेधिनी ।
छिद्रानुसारिणी-क्रूरा-नाग कन्येव मे प्रिया ।।४६।।
१२-५-७०

द्विजिह्वा=जिह्वाद्वयवती, वचनभंगश्च, छिद्रं=वल्मीकं-दोषश्च ।।४६।।

वानरी

चञ्चला—रक्तवदना-स्वच्छन्दवनचारिणी ।
वानरी, वा नरी-वाऽसौ सुग्रीवा-न्वयजा प्रिया ।।४७।।
२०-२-७०

सुग्रीव+अन्वयजा=सुग्रीव कुलजाता=वानरी ।
सुग्रीवा=सुन्दर ग्रीवा, अन्वयजा=कुलीना । नरी=नारी वा ।।४७।।

किंकरी

अधोदृष्टि–मितालापा–विनीता–विनतानना ।
पयोधरभरार्तेयं, किंकरी किं करीन्द्रगा ॥४८॥

५-६-७०

इय करीन्द्रगा=गजगामिनी किं किंकरी=दासी अस्ति
पयोधरभरार्ता=घटाङ्कितकटी ? ॥४८॥

किन्नरी

रागिणी—रक्तवदना-कलकण्ठी-सुरार्चिता ।
किन्नरी·कि न्नरी वेयं प्रवीणा मैथुनप्रिया ॥४९॥

१९-५-७०

रागिणी=गीतज्ञा—प्रेमिणी च सुर+अर्चिता, सुरा+ अर्चिता च
प्रवीणा=वीणावादिनो, चतुरा च मैथुनप्रिया=प्रिय सहचरी, संभोग
प्रिया च रक्तवदना=रक्तमुखी किन्नरी=किम्पुरुषांगना
कलकण्ठी=सुस्वरा किं नरी=नारी ॥४९॥

देवबाला

दिव्यरूपाम्बराभासा निर्निमेषावलोकना ।
तिरस्करिण्यदृश्या सौ, 'देवबाला' मम प्रिया ॥५०॥

१९-५-७०

हृदयेश्वरी

गत्या-रुचा-स्पर्श-विकम्प- मोहैः
सौदामिनीविभ्रममावहन्ति ।
यावत् स्थिता मे हृदि देवबाला,
तावत्कथं तस्य गतेः वरोधः ॥५१॥

मेरा हार्टफेल नहीं हो सकता ॥५१॥ १३-४-७०

प्राणेश्वरी

काली-कपर्दकघ्राणाचण्ड़ीचण्डमनोभवा ।
पुँश्चलीयं-स्वयंदूती, ममानिष्टपराजया ॥५२॥
२३-७-७०

अनिष्ट-पराजया,=अनिष्ट परा-अजया ॥५२॥

विप्रिया

प्रसाद मुपलब्धुं ते, प्रयतेयं यतो यतः ।
घृणां-दुर्भावनां-वैरं ददासि त्वं ततस्ततः ॥५३॥
३-२-७१

विमानेन विमानेन विमानेन मया प्रिये ! ।
रथ्या ते त्यज्यते देवि!, माऽनेन क्षोभमाप्नुहि ॥५४॥
३.२.७१.

वि-मानेन=पक्षिवत्, विमानेन=व्योमयानेन, विमानेन=तिरस्कृतेन,
यहां विमानेन पदों के ४ यमक हैं ॥५४॥

कामिनी कामुकः

१– नायाहि वीथीं मम·········तन्वि ! मन्ये,
२– नावाहृये मां·········सुभगे ! तथास्तु ।
३– नालोकयेरन्तरितोपि माम्···ओम्,
४– नापि स्मरे मां·····नहि शक्यमेतत् ।।५५।।

वार बार मना किया, हजार बार मना किया ।
मेरी गली मत आना ।।५५।।

विलोक्य बालाः पथि कूर्दमानाः,
समुच्छलत्येव मनो मदीयम् ।
यथा ऽवशः 'सर्कस'पञ्जरस्थः,
क्रीड़ाप्रवीणा वड़वा स्तरक्षुः ।।५६।।

१३.७.७०

सड़को पर कूदती हुई छोकरीयों को देखकर मेरा मन ऐसे उछलने लगता है, जैसे सर्कश में खेल करती हुई घोडियों को देखकर पिञ्जरे में बन्द बेचारा तरक्षुः ।।५६।।

प्रत्युक्ति

नालोकयेः सुन्दरतां तव प्रिये !,
प्रत्याहृते दृष्टिपथे प्रभाचयैः ।
न श्रूयते गी र्पि दूरभाषतः,
माधुर्यलोभागतमक्षिकारवैः ।।५७।।

२५-७-७०

प्रिया की प्रभा से मेरी आंखें चुंधिया जाती है तो मैं उसका सौन्दर्य कैसे देख सकता हूँ। उसकी वाणी इतनी मीठी है कि टेलिफोन पर कानों में पड़ते ही मक्खियों के भिनभिनाने के शोर से मैं कुछ सुन ही नहीं पाता ॥५७॥

कथं पत्रं लिखेयं तां, परदेश गतां प्रियाम् ।
हृदयात्स्पन्दमानान् मे करो यन्नापसर्पति ॥५८॥

२७-७-७०

स्वयं दीयमानां लभन्ते विलोमा
लघु श्मश्रुवन्तो बहु प्रार्थनाभिः ।
स्त्रिया दीनदीनं रतिं याचमाना
लभन्तेऽर्धचन्द्रं सितश्मश्रुकेशाः ॥५९॥

स्त्रियें उन नौजवानों के पीछे स्वयं भागती हैं जिनके अभी दाढी मूंछ न फूटी हो, युवा लोग प्रार्थनाएं करने पर उनका प्रेम पा ही लेते हैं। पर श्वेत वालों वाले प्रौढों को अति दीनता- आतुरता से प्रेम की भीख मांगने पर धक्के मिलते हैं।

क्यों कि स्त्रियों ने पुरुषों के तीन वर्ग बना रक्खे हैं, देखो पृष्ट ६२/३६

असञ्जातकूर्चः १ कलाकन्दकान्तो,
युवाऽऽरुढ़कूर्चः २ स चाटोपमेयः ।
सितैःश्मश्रुभिर् ३ गुग्गुलुक्वाथहेयः,
भवन्ति स्त्रियाः पुंसु भावा स्त्रयोऽमी ।

अब देखिये आप किस श्रेणीं (CATAGARY) मे हैं ॥५९॥

योऽधः निपात्य विजने भुवि यत्र तत्र,
दन्तै नंखै विलिखति क्षतजेन कायम् ।
आकृष्य केश-वसने विवृणोति गुह्यं
ध्यायन्ति–यान्ति-विनमन्ति तमेव वामाः ॥६०॥

३१-३-६४

एकोनषष्ठिघटिका, नरस्योपरि तिष्ठति ।
नारी व्यापारचतुरा घटी मेका मधः स्थिता ॥६१॥

१०-८-६८

त्रिकालं विग्रहे यत्नः श्मश्रु लोपः स्तनागमः ।
विवृतं दशमं द्वारं शेषंपुंवत् स्त्रिया वपुः ॥६२॥

८-६-७०

स्त्रियें (दिन-रात-सन्ध्या) तीनों काल कलह करती हैं। इनके दाढी-मूंछ नहीं होती, स्तन उग आते हैं, दशम द्वार (गर्भाशय) खुला रहता है, बाकी सब कुछ पुरुषों के बराबर होता है।

इस पद्य में वैयाकरण परिभाषाओं का संकेत है :—

तीनकाल-भूत-वर्तमान-भविष्य, विग्रह=समास का व्यास, अदर्शनं लोपः, मित्रवद् आगमः, विवृत-स्वरप्रयत्न, शेषं पुंवत्=नपुंसकलिंग में प्रथमा द्वितीया विभक्ति को छोड शेष पुंल्लिग की तरह होता है ॥६२॥

त्यक्त्वा गृहाणि-पितरौ--स्वजनान् सखींश्च,
देशं निजं परिजनं सहजां च भाषाम् ।
अज्ञातशीलविभवेन रमेत या स्त्री:
सा चेत्कठोरहृदया न भवेन्मृयेत ॥६३॥
६-६-६६

लड़की अपना घर बाहर माता - पिता-बन्धु-सखी-देश-दासदासी और भाषा तक छोड़कर एक अजनबी के साथ आनन्दित होती है अब सोचो कि यदि वह कठोर हृदया न हो तो मर न जाय ?॥६३॥

रोदित्येका हसत्यन्यो, बधूप्रस्थान कौतुके ।
रोदित्येको हसत्यन्या विवाहोत्तार जीवने ॥६४॥
लावण्यं नेत्रयो, र्वाचि माधुर्य मधरे मधु ।
दानादानं च मनसो, नि:श्वासे सौरभं वरम् ॥६५॥
नेति नेति वच: प्रेम्णि, कट्या: पाणिप्रमाणता ।
दाक्षिण्यं चापि वामानां, प्रतिज्ञा पालनं वृथा ॥६६॥
असतां च निबन्धेन, सतां चाप्यनिबन्धनात् ।
दुर्विज्ञेया- दुराराध्या- दुरापा-स्त्री: स्वभावत: ॥६७॥

यद्वा

लावण्यं नयने, ऽधरे नवमधु,श्वासे परं सौरभम्,
मध्यं पाणिमितं; गिरौ मधुरता,ऽऽदानं प्रदानं हृदो: ।

निर्बन्धादसतां सतां, विलपनाद्, वामापि या दक्षिणा,
स्त्री रस्त्रीकृत सुन्दराङ्गकरणा, शूरंजया सा ऽबला॥६८॥

स्वभाब से ही स्त्री को समझना-खुशकरना-पाना-कठिन है, क्योंकि इसमें कुछेक गुण होते हुए भी नहीं हैं और न होते हुए भी हैं, यथा—
आंखों मे नमक, श्वास में सुगन्धि, वाणी में मधुरता, अधर में मधु, हृदय का आदान प्रदान, मुट्ठी परिमित-कमर, प्रतिज्ञा भंग, प्रेम होते हुए भी इनकार यह वामा भी दक्षिणा है स्त्री भी अस्त्री (कटाक्षवाणादिशस्त्रधारिणी) है, अपराजिता है॥ इसका स्वभाव देखो पृष्ठ ६१ पर॥६५॥६६॥६७॥६८॥

वक्षोजयो र्विस्तृत मन्तरालं,
सूक्ष्मं-गभीरं स्थित मम्बरेऽपि।
शिक्षा परीक्षोद्यत भार्गवोप्तां
तां क्रौञ्चरन्ध्रस्य जहार लक्ष्मीम्॥६९॥

१७-१०-७०

कहते हैं कि शिक्षा पाटव दिखाने के लिये शंकर शिष्य परशुराम ने हिमालय के एक शिखर को बीच में द्विधा काट दिया था, उस दर्रे में से कूंजे आने जाने लगीं तब उसका नाम 'क्रौञ्चरन्ध्र' पड़ गया'। ॥६९॥

मस्तिष्के हृदयेऽक्षणोश्च, प्रियस्तिष्टति मे सदा।
तस्य शुष्क स्वभावत्वान् निद्रा नैति दिवा निशम्॥७०॥

४-७-६९॥ (फिरोड्री)

७१—देखा नहि गोरी का, मुख एक महीने से।
मर जाना बेहतर है, परदेस में जीने से।।

नहि गौर्या मुखाम्भोजं, मासादेकाद्विलोकितम्।
परदेश प्रवासेऽस्मिन्, जीवनान् मरणं वरम् ।।७१।।

३-३-७२ (छपते-छपते)

किमुच्छिष्ट मुच्छिष्ट मास्वादयन्ति,
कि मास्वाद्यमास्वद्य विन्दन्ति सौख्यम्।
किमाख्यायते मुख्य मेकं रसानां ?
कपोलो,ऽधरो दन्तकाष्ठ, रसालम् ।।७२।।

२५-४-५५

लालाक्लिन्ने निजोच्छिष्टे, कुत्र लालायते जनः।
विम्बाधरे मृगाक्षीणां, रसाले दन्तधावने ।।७३।।

१९-२-६२

निजोच्छिष्टमपि त्याज्यं, परोच्छिष्टस्य का कथा ?।
विना रसालम्-अधरं-कपोलौ-दन्त धावनम् ।।७४।।

२७-१-६७

शौचं हि साधारणतः प्रशस्तं,
तत्रापि दृष्टा वहवो ऽपवादाः।
प्रक्षालनीयाः प्रतिचूषणं किम् ?
इक्षुः-कपौलौ+अधरो+रसालम् ।।७५।।

२७-१-६७

आदाय गंगाजल पूर्णपात्रं,
मैमांसिको भोक्तुमुपैति भार्याम् ।
भूयो ऽथ भूयो ऽधरगण्डलग्न–
प्रचुम्बनष्ठीवन मार्जनाय ।।७६।।
स्वन्नौ कपोलौ, अधरं सलालं,
क्लिन्नं भगं, दुग्धवहावुरोजौ ।
ये लेलिहन्ते निशि वासनान्धाः
प्रात स्त एवोपदिशन्ति शौचम् ।।७७।।

विपरितरतम्

विपरीतं रतं वा स्याद्, अन्यथा वा किन्तरम् ?।
अधस्ताच्छुरिका वा स्याद्धवेद्धापि दशांगुलम् ।।७८।।

बुतो शाबास क्या कहने तरक्की इसको कहते हैं ।
अतरशे थे तो पत्थर थे जो तरशे तो खुदा ठहरे ।।

उन्नतिः कथ्यते सैषा मूर्ति ! साधु किमुच्यते ।
अतक्षितोऽभवद् ग्रावा, तक्षितो देवतां गतः ।।

पुंलिङ्गम्

शृंगवज्जायते, शिश्नं यत्र दृष्टे श्रुते स्मृते ।
स्पृष्टे घृष्टे परामृष्टे, 'शृंगारो'ऽसौ रसः स्मृतः ।।७९।।

२४-११-६६

ट्रैक्टर

येनैवोल्लिख्यते भूमिः, सिच्यते नलवत्तथा ।
येन चैवोप्यते वीजं, नमस्तेऽद्भुतलाङ्गल ! ॥८०॥

६-४-७०

एकेनैव हलेन भूमेः लेखनं—सिञ्चनं—वीजवपनं साध्यते, तदस्याद्भुतत्वम् । नमः=प्रणामः, नति श्च । लाङ्गलो यमुपस्थरूपः ॥८०॥

केशवः केशिनं वीरं द्वापरेऽदारयत्पुरा ।
केशवाः केशिनीमेकामनेके दारयन्त्यहो ॥८१॥
मञ्चाः क्रोशन्ति फूत्कारः फणिनोर्युद्ध्यमानयोः ।
श्रूयते, केशवो मन्ये केशिनीं दारयिष्यति ॥८२॥

१८-११-६६

मालोपमा

ऊर्ध्वमूलमधःशाखं पटोलमिव लम्बितम् ।
त्रुटितैकावलीखण्डं दण्डं 'रबर' निर्मितम् ॥८३॥
लम्बमानं यथा रज्जुं प्रम्लानं कर्कटीफलम् ।
कशापाशं मनोजस्य नागदन्तावलम्बितम् ॥८४॥
जलौकमिव नीरक्तं, इक्षुदण्डं निपीडितम्
महोरगमिवाप्राणं अण्डोपस्थं विलेशयम् ॥८५॥
छिन्नाग्रमिव लांगूलं, विमदेभकरं यथा ।
प्रभग्नास्थिं महाबाहुं, निर्दुग्धं महिषीस्तनम् ॥८६॥

यथा कान्तालकं स्रस्तं, शतांक (१००) मिवचायतम् ।
जंग्घाकांडं तृतीयं च, नीवीबन्धं श्लथं यथा ॥८७॥

अजागलस्तनमिव, भग्नमानं मनस्विनम् ।
वेणीपाशमिव स्थूलं, चाणक्यस्य शिखामिव ॥८८॥

सन्धिभेदे धृतं चौरं, दृष्टदोषमधोमुखम् ।
प्रथमं फारसी वर्ण (।), नेकटाई पटं यथा ॥८९॥

धर्षयित्वा प्रविश्यान्ता, रुदतीं सुभगां सतीम् ।
निर्वीर्यं लज्जया क्लान्तं, पश्चात्तापनताननम् ॥९०॥

ह्रस्वं दीर्घं कृशं स्थूलं, कठिनं-कोमलं जडम् ।
स्तब्धं विनयसंपन्नं, शालप्रांशुं महाशयम् ॥९१॥

जटिलं वाऽथ मुण्डं वा, श्वेतरक्तं, तमः प्रियम् ।
नानाकारं महावीर्यं, नानायोनिगतागतम् ॥९२॥

कामरूप, सुखस्पर्शं, जगन्मूलं महालयम् ।
प्रमाणं पौरुषेनॄणां, भगवन्तं भगन्दरम् ॥९३॥

अबलामारणे शूरं युद्धे चाभिमुखं हतम् ।
जीवितं स्मृतिमात्रेण, मृतं विस्मृतिमात्रतः ॥९४॥

स्तब्धग्रीवं, महाशल्यं, वमिनं शोथिनं कृशम् ।
विंचेष्टमान, मेकाग्रं, कम्पमानं ज्वरार्दितम् ॥९५॥

अग्रवालैः परिवृतं, कौणपानां सदाश्रयम् ।
चेष्टमानं विना प्राणैः, वस्त्रे प्राणप्रवर्तकम् ॥९६॥
नागदन्तं यथाभित्तौ, अर्धभग्नं ध्वज़ं यथा ।
यथा विप्रकृतंनागं, यागे यूयं विरोपितम् ॥९७॥
मृणालमिव सच्छिद्रं, चतुष्काम्बुनलं यथा ।
निखातं देहलीमध्ये-चन्द्रगुप्तध्वजं यथा ॥९८॥
शरं शष्ठं मनोजस्य, बन्दूकं वा प्रतानितम् ।
अपत्रं कदली खण्डं, ज्योतिस्स्तम्भं यथाऽर्णवे ॥९९॥
मेहनं सर्वकामानां, मोहनं सर्व कामिनाम् ।
रोपितं क्रोशपाषाणं, विषाणं कटिसंभवम् ॥१००॥

ब्रह्मा

प्रजापतिं सदानन्दं, स्रष्टारं, परमेष्ठिनम् ।
विश्वसृजं विधातारं, रजोमूर्तिं, स्वयंम्भुवम् ॥१०१॥

विष्णुः

विष्णुं, कामप्रजननं, केशवं, कृष्ण मच्युतम् ।
कुक्षिवेधचणं, चण्डं वामनं व्योमविक्रमम् ॥१०२॥

महेशः

उग्रं, कपर्दिनं, स्थाणुं, भीमं, रुद्रं, दिगम्बरम् ।
कृशानुरेतसं, लिगं, व्योमकेशं, पुरन्दरम् ॥१०३॥

स्त्रीलिंग

संसेव्यमाना, कुणपैः सुघोरैः,
जटाकुला, कृष्णवने वसन्ती, ।
अलक्षिता, शक्तिहरा परेषाम्,
आनन्ददा स्याद् भगनामदेवी ॥१०४॥

यस्या मुशन्तः प्रहारम शेफं
यस्यामु कामा वहवो निविष्ट्यै । (वेदे)
यस्यां युवानो यवना भगाय
स्वाहे' त्यहो जुह्वति यौवनानि ॥१०५॥

पद्यका पूर्वार्द्ध वैवाहिक मन्त्र का भाग है ।

मेरे विवाह (५.८.१९१८) में श्री० पं० भानुदत जी शास्त्री मन्त्र व्याख्या करते हुए वर-वधू को उपदेश दे रहे थे, मैं अस्वस्थता-वश चुप चाप बैठा था, मुझे जड़ भरत समझ झुंझलाकर बोले-भई ! कुछ समझते भी हो या कि मैं व्यर्थ बक रहा हूं?, मैंने धीरे से कहा जी ! केवल एक मन्त्र समझ सका हूँ, और उसपर आचरण करूगा, वह अन्तिम मन्त्र है-

''ओं भगाय स्वाहा इदं भगाय''।

और शास्त्री जी चकित एवं प्रसन्न हो उठे ॥१०५॥

इति गुरुदयालु शर्मणः कृतौ काव्यामृतधारायां मुक्तक काव्ये प्रकीर्ण पद्यानाम् पञ्चदशः तरङ्गः ॥१५॥

समाप्तश्चायंग्रन्थः

ब्रह्मार्पणम्